मॉड्यूल 3

मानव विकास एवं समायोजन हेतु मार्गदर्शन

शैक्षिक मनोविज्ञान एवं शिक्षा आधार विभाग

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्

मॉड्यूल के विषय में

मार्गदर्शन एवं परामर्श पाठयक्रम का यह तीसरा मॉड्यूल है। यह आपको विकास एवं समायोजन को एक प्रक्रिया के रूप में समझने के योग्य बनाता है जो एक व्यक्ति के जीवन काल में सतत् चलती रहती है। यह दोनों प्रक्रियाएँ अन्योन्याश्रित हैं। इन प्रक्रियाओं की जानकारी कुछ समस्याओं को समझने में आपको समर्थ बनाएगी जो छात्रों के जीवन काल की प्रारम्भिक अवस्थाओं में घटित होते हैं एवं जिस प्रकार से ये विद्यालय एवं भविष्य में समायोजन, उनके जीवन की गुणवत्ता एवं संबंधों को प्रभावित करते हैं। ये समस्याएँ समय-समय पर वंशानुक्रम, वैयक्तिक, पारिवारिक या अन्य पर्यावरणीय कारकों जैसे शिक्षक के द्वारा कठोर दण्ड या अन्य छात्रों के द्वारा शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक रुप से कष्ट पहुँचाने के कारण उत्पन्न होती हैं। यह गंभीर रूप से सांवेगिक अथवा व्यवहारवादी समस्याओं की तरफ ले जाती हैं।

पहली यूनिट विकास की विभिन्नता तथा छात्रों के समायोजन में उनके प्रभाव की पृष्ठभूमि उपलब्ध कराती है। दूसरी यूनिट व्यक्तित्व को समझने एवं विकास को सहज बनाने में विभिन्न उपागमों से संबंधित है। तीसरी यूनिट व्यवहार के विविध तरीकों की पहचान करने पर केन्द्रित हैं जो सही प्रकार से अनुकूलित एवं दुरनुकूलित छात्रों की विशेषता बताते हैं। चतुर्थ यूनिट विविध प्रकार के कारकों जैसे विकास एवं समायोजन में आनुवंशिक एवं पर्यावरणीय कारकों का निरीक्षण करता है। यह मॉड्यूल आपको विकास की विशेषताओं के तरीकों, जीवन की विभिन्न अवस्थाओं एवं प्रभावों को समझने में सहायता देने के उद्देश्य पर आधारित है जो अलग-अलग प्रकार के व्यक्तित्व निर्माण की तरफ ले जाता है। छात्रों की पृष्ठभूमि में अंतर्दृष्टि एवं जीवन की गुणवत्ता के लिए इसकी अर्थापत्ति, मानसिक स्वास्थ्य एवं कुशल-क्षेम आपको विद्यार्थियों का अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से सामना करने में समर्थ बनाएगी।

प्रत्येक यूनिट में आत्म-निरीक्षण अभ्यास एवं क्रियाकलाप हैं जो आपको आपकी उन्नति के मूल्यांकन (इस मॉड्यूल के द्वारा) में सहायता करेंगे।

यूनिट के अन्त में दिया गया सारांश यूनिट के बारे में सिंहावलोकन उपलब्ध कराता है एवं संदर्भ पुस्तकें तथा अतिरिक्त पुस्तकें सूचना का अतिरिक्त स्त्रोत प्रदान करती हैं।

विषय-सूची

मॉड्यूल के विषय में

यूनिट-1: जीवन काल परिप्रेक्ष्य में मानव विकास

यूनिट-2: व्यक्तित्व के विकास एवं प्रकृति पर परिप्रेक्ष्य

यूनिट-3: व्यवहार के अनुकूलक एवं दुरनुकूलक नमूने

यूनिट-4: विकास एवं समायोजन को सुसाध्य बनाना

1

जीवन काल परिप्रेक्ष्य में मानव विकास

1.0 परिचय

1.1 उद्देश्य

1.2 मानव विकास की प्रकृति

- 1.2.1 शारीरिक ढाँचा
- 1.2.2 संज्ञान एवं भाषा
- 1.2.3 सामाजिक-भावनात्मक एवं नैतिक विकास

1.3 विकास-एक आजीवन प्रक्रिया

- 1.3.1 विकास सार्वभौम है
- 1.3.2 विकास बहुआयामी है
- 1.3.3 विकास प्रासंगिक है
- 1.3.4 सतत् अथवा असतत् विकास

1.4 आनुवंशिकता, पर्यावरण एवं विकास

1.5 विकास की गति

- 1.5.1 विकास में व्यक्तिगत विभिन्नता
- 1.5.2 जीवन काल के साथ-साथ विभिन्नता
- 1.5.3 विकास का पर्यावरणीय उद्दीपन

1.6 विकास के मील-पत्थर

- 1.6.1 जन्मपूर्व अवस्था
- 1.6.2 शैशवावस्था
- 1.6.3 बाल्यावस्था
- 1.6.4 किशोरावस्था
- 1.6.5 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था
- 1.6.6 अधेड़ अवस्था
- 1.6.7 वृद्धावस्था

1.7 परामर्श हेतु जीवन काल-विकास का तात्पर्य

1.8 सारांश

आत्म-मूल्यांकन अभ्यास

आत्म-मूल्यांकन अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

आत्म-निरीक्षण अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

पठनीय पुस्तकें

1.0 परिचय

एक कोशिका का मानव के रूप में विकास एवं अनुवर्ती परिवर्तनों के द्वारा बच्चे का वयस्क के रूप में परिवर्तन, फिर वरिष्ठ नागरिक के रूप में परिवर्तन ने वैज्ञानिकों को हमेशा सम्मोहित किया है। प्रत्यक्ष शारीरिक विशेषताएँ केवल चिकित्सा-शास्त्र द्वारा ही प्रमाणित नही हैं बल्कि साहित्य, मानविकी एवं छायाचित्रण द्वारा भी हैं। एक बहुत छोटी कोशिका बच्चे के रूप में विकसित होती है जो कि पहले एक वयस्क एवं बाद में एक वृद्ध व्यक्ति के रूप में परिपक्व होती है। जीवन के शुरुआती वर्षों से लेकर प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था तक विकास की गति बहुत तेज होती है। बहुत से प्रत्यक्ष परिवर्तन शरीर में होते हैं। लेकिन क्या आप जानते हैं कि यह जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनवरत होता है। जैसा कि प्रत्यक्ष परिवर्तन प्रारम्भिक वर्षों में तीव्र गति से होते हैं इसलिए बचपन के शुरूआती समय में विकास पर बहुत ध्यान दिया गया था। सभी हस्तक्षेप / अंत:क्षेप शुरूआती वर्षों पर ही केन्द्रित थे। बाद में मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को तीव्र विकास एवं तनाव के समय के रूप में पहचाना और किशोरावस्था को भी शामिल करने के लिए अंत:क्षेपों का केन्द्र बदला। फिर भी दीर्घ आयु में वृद्धि, अधेड़ अवस्था एवं वृद्धावस्था में जीवन की गुणवत्ता के प्रति चिंता ने इस अवधि के दौरान भी अनवरत विकास के ज्ञान को दिशा दी है और इस सत्य को कि किसी विशेष अवस्था में विकास परवर्ती अवस्था में विकास को प्रभावित करता है।

अत: यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार से जीवन काल में लगातार विकास होता रहता है। जीवनपर्यंत प्रक्रिया एवं परिवर्तनों के अध्ययन के रूप में विकास को समझना, विकास के प्रतिमान एवं विभिन्न अवस्थाओं को प्रभावित करने वाले कारकों को ही विकास के लिए जीवन-काल अभिगम कहा जाता है। विभिन्न अवस्थाओं को प्रभावित करने वाले कारकों एवं इन परिवर्तनों का ज्ञान हमें परामर्शदाता के रूप में समर्थ बनाएगा। आनुक्रमिक अवस्थाओं में घटित होने वाली समस्याओं में अंतर्दृष्टि का विकास करने एवं यह सुनिश्चित करने में कि स्वस्थ विकास में सहायता करने के लिए सही समय पर प्रभावपूर्ण कार्यवाही करना है। इस प्रकार, विकास के लिए जीवन काल अभिगम सभी आयु समूहों में जीवन की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के उद्देश्य पर आधारित है।

इस यूनिट में आपको जीवन काल के परिप्रेक्ष्य में मानव विकास की प्रकृति से परिचित कराया जाएगा जो कि विकास की विशिष्ट विशेषता के अभिगम के रूप में है। विकास की गति एवं उन कारकों के विषय में जिनसे विकास प्रभावित होता है उसकी चर्चा की जाएगी। सम्पूर्ण जीवन काल में विकास की शैली, निर्णायक अवधि एवं उनकी विशिष्ट विशेषताओं की भी चर्चा की जाएगी एवं परामर्श हेतु इस अभिगम के महत्व पर प्रकाश डाला जाएगा।

1.1 उद्देश्य

इस यूनिट को पढ़ने के पश्चात्, आप यह समझने में सक्षम होंगे–

- जीवन काल परिप्रेक्ष्य में विकास की प्रकृति का वर्णन करना।
- विकास की विशेषताओं की व्याख्या करना।
- विकास में वंशानुगत एवं पर्यावरण की भूमिका पर चर्चा करना।
- जीवन काल के साथ-साथ विकास की गति का वर्णन करना।
- विकास की विभिन्न अवधियों का उनके विलक्षण विशेषताओं के संदर्भ में वर्णन करना।
- परामर्श हेतु विकास के जीवन काल परिप्रेक्ष्य के तात्पर्य की व्याख्या करना।

1.2 मानव विकास की प्रकृति

विकास उम्र के साथ होने वाले परिवर्तनों के अनुक्रम का संकेत करता है जो व्यक्तियों को उत्तरोत्तर वृद्धि करने, नई विशेषताओं एवं क्षमताओं को अर्जित करने में सक्षम बनाना है। परिवर्तन निम्न क्षेत्रों में घटित होते रहते हैं–

- शारीरिक संरचना (ढाँचा)
- संज्ञान एवं भाषा
- सामाजिक-भावनात्मक एवं नैतिक अभिव्यक्ति।

1.2.1 शारीरिक-संरचना

शारीरिक विकास परिमाण एवं आकार में परिवर्तन लाता है। परिमाण में ये परिवर्तन केवल लम्बाई, वजन एवं परिमाण के संदर्भ में नही होते हैं जो दिखाई पड़ते हैं बल्कि आन्तरिक विकास भी हृदय, पेट, आँख, आँतों, आदि में होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त, हड्डियाँ तेज गति से बढ़ती रहती हैं, फिर भी बच्चों के साथ विभिन्नताएँ हैं। जैसे जैसे बच्चे का विकास होता है, मांसपेशियाँ भी मजबूत होती रहती हैं। समग्र रूप में एक बच्चे में बचपन के शुरूआती वर्षों में ज्यादा चर्बी होती है और जैसे जैसे किशोरावस्था की तरफ बढ़ता है मांसपेशियाँ अर्जित करता है। चालक कौशल में अन्य परिवर्तन भी होते रहते हैं एवं जटिल कार्यों जैसे गाड़ी चलाना, तैराकी, आदि में समन्वयन होता रहता है। विभिन्न प्रकार की मांसपेशियों में समन्वयन के कारण ही ये जटिल कार्य संभव हो पाते हैं।

1.2.2 संज्ञान एवं भाषा

पर्यावरण से तात्पर्य निकालना संज्ञान है। यह समस्याओं पर विचार करने एवं समाधान निकालने से संबंधित है। संज्ञानात्मक क्षमता सामान्य रूप से उम्र के साथ बढ़ती है। परिवर्तनों के विभिन्न रुपों एवं इन परिवर्तनों के प्रभावों के विषय में विभिन्न सिद्धान्तवादियों ने व्याख्या किया है। उनमें से एक प्रमुख सिद्धान्त पियाजे (Piaget) का

है जो शुरुआती विकासात्मक परिवर्तनों के विषय में है। उनके अनुसार, दो महत्वपूर्ण प्रक्रियाएँ आत्मसात्करण और अनुकूलन चलती रहती हैं जो कि संज्ञानात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण होती हैं। आत्मसात्करण से तात्पर्य पर्यावरण से सूचना को उसी रुप में ग्रहण करना। उदाहरणार्थ, एक कुर्सी को देखते हुए बच्चा कुर्सी कहना सीखता है। अनुकूलन से तात्पर्य पूर्व अधिगम में नए ज्ञान का समायोजन करना। उदाहरणार्थ, एक बार जब बच्चा सीख लेता है कि कुर्सी बैठने के लिए होती है वह किसी अन्य वस्तु को कुर्सी के रुप में बैठने के लिए कह सकता है।

पियाजे (Piaget) के अनुसार विकास (i) संवेदी-प्रेरक, (ii) पूर्व-संक्रियात्मक, (iii) मूर्त-संक्रियात्मक एवं (iv) औपचारिक संक्रियात्मक अवस्थाओं के द्वारा आगे बढ़ता है। संवेदी-प्रेरक अवस्था के दौरान बच्चा अपनी प्रतिक्रियात्मक, चालक क्रिया एवं कार्यों में समन्वय अर्जित करता है। पूर्व- संक्रियात्मक अवस्था में बच्चा बहुत सी अवधारणाओं या मानसिक आकार अर्जित करता है और उन आकारों को समझने एवं वर्णन करने के लिए शब्दों का प्रयोग करता है। लेकिन यह समझना महत्वपूर्ण है कि बच्चे के द्वारा सभी मानसिक आकारों एवं अनुभवों को शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। बच्चा घटनाओं के बीच अनेको संबंधों को नहीं समझ पाता है। वह नहीं समझ सकता है कि जब उसे एक कमरे में बन्द किया जाता है तब वह कुछ समय पश्चात् अपने अभिभावक के द्वारा स्वतंत्र कर दिया जाएगा। वह तब केवल अपने दृष्टिकोण को देखता/देखती है।

मूर्त-संक्रियात्मक अवस्था के दौरान, बच्चों के विचार बेहतर ढंग से विकसित हो जाते हैं और वे विभिन्न मूर्त घटनाओं के बीच संबंधों को समझने के योग्य हो जाते हैं। जिस समय बच्चा औपचारिक संचालन अवस्था में पहुँचता है, वह अमूर्त अवधारणाओं एवं अमूर्त अवधारणाओं के बीच में संबंधों को भी समझने के योग्य हो जाता है।

भाषा का विकास भी इसी प्रकार के ढ़ंग का अनुगमन करता है। पदार्थों का वर्णन करने के लिए शब्दों को अर्जित किया जाता है और धीरे-धीरे अमूर्त अवधारणाएँ अर्जित की जाती हैं। भाषा के अर्जन के द्वारा समस्या-समाधान एवं विचार को सरल बनाया जाता है।

1.2.3 सामाजिक-भावनात्मक एवं नैतिक विकास

भावनात्मक विकास प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता की भावना के विकास से संबंधित है और आगे भावनाओं का विभेदीकरण स्नेह, उत्तेजना, खुशी या तकलीफ, चिन्ता, भय, आदि में होता है। बच्चे का सामाजिक विकास सर्वप्रथम परिवार के सदस्यों के साथ लगाव विकसित करके प्रारंभ होता है एवं धीरे-धीरे अन्य लोगों जैसे–दोस्तों, शिक्षकों, पड़ोसियों आदि के साथ होता है। जैसे जैसे संबंध व्यापक होते हैं, भावनात्मक विकास की गति बढ़ती जाती है।

धीरे-धीरे जब बच्चा बड़ा होता है, वह अनेकों संगठनों जैसे समुदाय, कार्यक्षेत्र आदि में जाता है। उसका व्यवहार एवं सम्बंध समुदाय के मूल्यों, रुझानों एवं नियमों के आधार पर होता/होती है। नैतिक विकास इन मूल्यों के अनुसार व्यवहार करने से संबंधित है।

1.3 विकास एक जीवनपर्यन्त प्रक्रिया

विकास एक गतिशील एवं जीवनपर्यन्त प्रक्रिया है। विकास बहुत से आयामों में साथ-साथ होता है जिनमें से प्रत्येक अन्योन्याश्रित हैं। परिपक्वता एवं अधिगम अपरिमित हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, विकास एवं अपकर्ष दोनों की विरोधी प्रक्रियाएँ जीवनपर्यन्त विकास से संबंधित रहती हैं। ये दोनों प्रक्रियाएँ गर्भधारण से प्रारंभ होती हैं और मृत्यु के बाद समाप्त हो जाती हैं। विकास की प्रक्रिया जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में प्रबल होती है जबकि अपकर्ष जीवन के बाद की अवस्थाओं में गति पकड़ता है।

विकास एवं अपकर्ष का चक्र मानव के समूचे जीवन काल तक प्रत्यक्ष रुप से होता रहता है। वृद्धावस्था में भी विकास एक घर्षण विराम पर नही रुकता है जैसा कि बालों में वृद्धि एवं कोशिकाओं के प्रतिस्थापन से प्रमाणित होता है।

विभिन्न अवस्थाओं को प्रत्यक्ष परिवर्तनों के द्वारा श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। विकास की इन अवस्थाओं को उस अवस्था की प्रतीकात्मक विशेषताओं के द्वारा चिह्नित किया गया है जैसे शैशवावस्था विलोपन के ऊपर नियंत्रण प्राप्त करने एवं भाषा के विकास से संबंधित है, मध्य बचपन भाषा के तीव्र विकास को बताता है, किशोरावस्था स्पष्ट अनुपूरक लैंगिक विशेषताओं को प्रकट करता है।

अब, हमें विकास की कुछ अन्य विशेषताओं को देखना है।

1.3.1 विकास सर्वव्यापक है

विकास एक विशिष्ट प्रतिमान का अनुसरण करता है जो अत्यंत संगठित है। ये प्रतिमान सभी व्यक्तियों के लिए समान हैं एवं विकास का प्रतिमान कहीं भी रहने वाले विश्व के सभी प्राणियों में समान है। व्यक्ति का विकास भिन्न हो सकता है, कुछ लोग दूसरों से आगे हो सकते हैं लेकिन क्रम कभी नही बदलता है। उदाहरण के लिए, बच्चे चलने से पहले रेंगते हैं, दौड़ने के पहले चलना सीखते हैं, बोलने के पहले वे तुतलाते हैं। विकास की अन्य सर्वव्यापक विशेषता सामान्य से विशिष्ट व्यवहार की वृद्धि में निहित है। पहले अपरिष्कृत सामान्य प्रतिक्रियाएँ सीखी जाती हैं और बाद में अधिक कुशल एवं केन्द्रित व्यवहार की ओर परिणित होती है। प्रारंभ में शरीर की गति विसरित एवं अनियमित होती है लेकिन समय के साथ गति सुनिश्चित हो जाती है, भाषा अविभेद्य होती है लेकिन धीरे-धीरे समय के साथ यह अधिक स्पष्ट एवं विशिष्ट हो जाती है।

जैसा कि आप देख सकते हैं कि उपरोक्त वर्णित विकास के प्रतिमान समस्त मानव-जाति के लिए सर्वव्यापक हैं। इन प्रतिमानों को सभी प्राणियों की जनन प्रतिभा के द्वारा आगे बढ़ाया जाता है। यद्यपि विशिष्ट व्यावहारिक सक्षमता भिन्न हो सकती है, लेकिन प्रतिमान सभी प्राणियों के लिए एक समान हैं।

1.3.2 विकास बहु आयामी है

जैविक, संज्ञानात्मक एवं सामाजिक-भावनात्मक विकास के परिणामस्वरुप, शारीरिक (शरीर की लम्बाई एवं वजन में वृद्धि), चालक (शरीर की गति एवं पेशी-तंत्र को नियंत्रित करने का विकास), भाषा-विषयक (बोलना/भाषा), बुद्धि (उच्च मानसिक प्रक्रियाओं का विकास), सामाजिक एवं नैतिक विशिष्टताओं में परिवर्तन होते हैं। विकास के इन पहलुओं में से प्रत्येक पहलू विकास पर अध्ययन के द्वारा अन्वेषित किया गया है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि ऊपर बताए गए विकास के अनेकों पहलू एक दूसरे से स्वतंत्र नही हैं।

उदाहरणार्थ, लेखन-कौशल के विकास हेतु अच्छा चालक समन्वयन आवश्यक है। यह समझने की सुविधा के लिए है कि आप मानव विकास के विशिष्ट पहलुओं को एक समय में किसी एक पर केन्द्रित करेंगे।

विकास की प्रत्येक अवस्था अन्य पर्यावरणीय कारकों के प्रभाव के अंतर्गत होती है। इस प्रकार, आपको उन प्रसंगों को जानने की आवश्यकता है जिसमें आप विकास के पक्ष को देखते हैं।

1.3.3 विकास प्रासंगिक है

जो बच्चों की शिक्षा, देखरेख एवं परामर्श के लिए उत्तरदाई हैं उन्हे समझना है कि न केवल सूक्ष्म कारक जैसे परिवार, शिक्षक, पड़ोस, आदि विकास को प्रभावित करते हैं बल्कि कम स्पष्ट बड़े प्रभाव जैसे कानून, रीति-रिवाज, अर्थ-व्यवस्था, संस्कृति, आदि भी विकास को प्रभावित करते हैं। यदि कोई संज्ञानात्मक क्षमताओं के विकास की तुलना उस अवस्था से करता है, जब अप्रधान लैंगिक विशिष्टताएँ कॅरियर पूर्वाभिमुखीकरण की समझ, आदि अर्जित की जाती हैं, तब 19वीं शताब्दी में पैदा हुए बच्चों एवं 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पैदा हुए बच्चों में असाधारण विभिन्नताएं हैं।

बड़े कारकों जैसे सामान्य आर्थिक दशा, सामाजिक-राजनीतिक वातावरण, सामाजिक नियम आदि जो समाज में प्रचलित हैं, विकास में अप्रत्यक्ष भूमिका निभाते हैं। ये कारक जीवन की सामान्य गुणवत्ता, सुरक्षा की भावना एवं स्वास्थ्य संसाधनों की सामान्य उपलब्धता, देखरेख, शिक्षा हेतु अवसरों, आदि को प्रभावित करते हैं। बदले में ये परिवार के पर्यावरण एवं अंत में बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं।

पर्यावरण में उपस्थित इन प्रासंगिक कारकों चाहे शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक या सामाजिक-सांस्कृतिक हों, इन सब में विकास के स्वरुप को प्रभावित करने की क्षमता

होती है। हवा, पानी, पोषक तत्व की विशेषता किसी विशेष प्रदूषित पदार्थ की उपस्थित अथवा अनुपस्थिति आदि विकास की असामान्यता का कारण हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, जापान में परमाणु विध्वंस के बाद पैदा हुए बच्चे चर्म रोग की समस्याओं से पीड़ित हुए एवं वायु प्रदूषण वाले शहरों में बच्चे अनवरत श्वसन की बीमारियों की समस्याओं से परेशान होते हैं। विटामिन A पर्याप्त मात्रा में न मिलने की वजह से दृष्टिशक्ति कमजोर हो जाती है।

पर्यावरण में सामाजिक-भावनात्मक कारकों जैसे–गर्मजोशी, प्रेम एवं परिवार में उपलब्ध देख-भाल भी मनोवैज्ञानिक विकास, सुरक्षा की भावना, स्वाभिमान एवं पहल करने की योग्यता को प्रभावित करते हैं। बच्चों में असुरक्षा एवं स्वाभिमान की कमी उन घरों में रहने का परिणाम है जहाँ का मनोवैज्ञानिक वातावरण भय, आलोचना, दण्ड आदि से घिरा हुआ है। उसी प्रकार, सांस्कृतिक कारकों जैसे समरुप सांस्कृतिक वातावरण, उस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाएँ, कला एवं संस्कृति का प्रभाव एवं आर्थिक ताकतें जैसे वैश्वीकरण, युद्ध, आर्थिक तेजी आदि एक व्यक्ति के विकास को अधिकतम सीमा तक ले जाते हैं। उदाहरणार्थ, वे लोग जो विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृति, कला या अन्य प्रकार के खेलों अथवा कौशलों से परिचित हैं, उनके पास विविध सांस्कृतिक पर्यावरण में अपनी क्षमता को विकसित करने, ज्यादा सुरक्षित एवं आराम महसूस करने का विकल्प होता है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-1

निम्नलिखित विकल्पों में से खाली स्थान को भरिए–

अ. शारीरिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक

ब. उन्नति, क्षीणता

स. परिपक्वन, अनुभव

द. गतिशील, आजीवन

1. विकास ————————- और ———————— परिवर्तनों के विकासात्मक क्रम का संकेत करता है।
2. विकास एक ———————— एवं ———————— प्रक्रिया है।
3. दो आवश्यक विरोधी प्रक्रियाएँ जो विकास में शामिल हैं, वे ———————— और ———————— हैं।
4. ———————— एवं ———————— कारकों के द्वारा विकास प्रभावित होता है।

सभी प्रासंगिक कारकों को जो कि विकास को प्रभावित कर सकते हैं, उनके विषय में जानने के बाद आप आश्चर्य कर सकते हैं कि किस प्रकार से आप उनके व्यक्तिगत प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे। दो दृष्टिकोणों के बारे में नीचे चर्चा की गई है।

व्यक्तिगत कारकों के प्रभावों का अध्ययन करना कठिन है क्योंकि यह दिखाई दे सकता हैं एवं नही भी दे सकता है जब तक कि यह वास्तव में सरलीकरण अथवा अशांति उत्पन्न कर देता है। यह तथ्य कि विकासात्मक परिवर्तन हमेशा दृश्य नहीं होते हैं, विकास के सतत् एवं असतत् होने पर प्रश्न खड़ा करता है जिसे निम्नलिखित भाग में बताया गया है।

1.3.4 सतत् अथवा असतत् विकास

कुछ उन्नतिशीलों के विचार में जीवन काल विकास एक विकासात्मक अवस्था से दूसरे में निर्विध्न रुप से परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार विकास एक क्रमिक सतत् परिवर्तन समझा जाता है जिसमें एक अवस्था की उपलब्धियाँ उन पूर्व अवस्थाओं पर निर्मित होती हैं। सतत् परिवर्तन गुणात्मक के स्थान पर मात्रात्मक परिवर्तनों को समाविष्ट करता है।

यदि व्यक्तियों में केवल बाह्य रुप से दृश्य परिवर्तनों के आधार पर ही विकास को समझा जाता है तब कई अलग-अलग अवस्थाएँ श्रेणीबद्ध की जा सकती हैं। प्रारम्भिक बचपन का समय जब बच्चा पूर्णतया दूसरों पर आश्रित होता है एवं वह चालक समन्वयन, बोलना एवं दूसरों से सम्बद्ध होने का कौशल अर्जित कर रहा होता है। किशोरावस्था वह समय है जब व्यक्ति भावनात्मक स्वतंत्रता एवं लैंगिक क्षमताओं का विकास करता है। प्रौढ़ावस्था को भावनात्मक-सामाजिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने, निर्णय लेने, एक नया परिवार प्रारंभ करने एवं इस प्रकार के बहुत रुपों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। लेकिन यदि कोई इन विकासात्मक परिवर्तनों में निहित प्रक्रियाओं के संदर्भ में विकास की तरफ देखता है, सभी परिवर्तन/व्यवहार सतत् ढंग से घटित प्रतीत होते हैं। भावनात्मक विकास, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक संबंधों के बारे में सोचना एवं निर्णय लेना आदि अंत:स्त्राविक अवस्था बढ़ाने के साथ धीरे-धीरे विकसित होते हैं। यह दृष्टिकोण जीवन काल मनोविज्ञान के क्षेत्र को प्रभावित करता है। मूलभूत अन्तर्निहित विकासात्मक प्रक्रियाएँ जो दृश्य परिवर्तनों की तरफ ले जाती हैं, समूचे जीवन काल पर्यन्त वैसी ही विद्यमान रहती हैं। एक अवस्था में जिसे परिवर्तन के रुप में अवलोकन किया है वह वृद्धीय परिवर्तन के समेकन अंश में परिवर्तन है जो कि प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति या समन्वयन या सुविज्ञता का उच्चतम स्तर है।

अन्य विकास-विचारक परिवर्तन को असतत् प्रक्रियाओं से संबंधित समझते हैं। इसका तात्पर्य है कि विकास में दृष्टिगोचर परिवर्तनों को लाने के विषय में प्रमात्रा अन्तरों में भेद है। जैसा कि विकास अलग-अलग चरणों में घटित होता है। इन विकास-विचारकों

में जीवन क्रम को अलग-अलग विवेचनात्मक अवस्थाओं में श्रेणीबद्ध करने के लिए जोर दिया है। उदाहरणार्थ, किशोरावस्था लैंगिकता प्रकट करने के लिए एक विवेचनात्मक अवस्था के रुप में प्रतीत होती है।

फिर भी, आप को पता चलेगा कि दोनो संकल्पनाएँ प्रासंगिक है। दोनों विकास से संबंधित तथ्यों पर आधारित होंगे एवं विकास को समझने के लिए दोनों के विचार महत्वपूर्ण हैं। अवस्था का दृष्टिकोण परिवर्तन को समझने के लिए संदर्भ बिन्दुओं को उपलब्ध कराता है जबकि सतत् अथवा जीवन क्रम दृष्टिकोण अलग-अलग क्षमताओं में निहित प्रक्रियाओं के अध्ययन के योग्य बनाता है जो व्यक्ति के जीवन के साथ-साथ उत्पन्न होती है एवं कारकों के विषय में जो उन्हें प्रभावित करते हैं। इस प्रकार, हम अपने विचार को सतत् एवं असतत् परिप्रेक्ष्य में विभक्त किए बिना विकास के विषय में अध्ययन करेंगे कि यह सम्पूर्ण जीवन काल में घटित होता रहता है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-2

1. बच्चों के विकास को प्रभावित करने वाले कुछ सूक्ष्म व्यवस्थाओं का उदाहरण दीजिए।
2. किस प्रकार वृहत् कारक बच्चे के पारिवारिक वातावरण को प्रभावित करते हैं?

1.4 वंशानुक्रम, पर्यावरण एवं विकास

विकास कुछ मात्रा में अन्तर्निहित आनुवांशिक क्षमताओं को स्पष्ट करने के लिए या व्यक्ति के वंशानुक्रम को और कुछ अंशों में पर्यावरण में होने वाले अधिगम के कारण होता है। आनुवंशिक पद्धति परिपक्वता के समय का निर्णय करता है। परिपक्वता मूलभूत अपरिष्कृत उपादान उपलब्ध कराता है जो अधिगम को संभव बनाता है। उदाहरणार्थ, एक बच्चा चल अथवा बोल नही सकता है जब तक कि इन गतिविधियों के लिए उसका/उसकी शारीरिक क्षमताएँ परिपक्व नही हो जाती हैं। एक बार जब परिपक्वता प्राप्त हो जाती है, तब प्राप्त की गई सुविज्ञता का विस्तार बाह्य उद्दीपन पर निर्भर होगा। इस प्रकार परिपक्वन एवं अधिगम की प्रक्रियाएँ अन्योन्याश्रित हैं।

फिर भी, कुछ निश्चित गतिविधियाँ एवं कार्य हैं जो सभी प्राणियों में पाए जाते हैं, जैसा कि बैठना, खड़े होना, चलना, आदि जो अपनी तरह से परिपक्व होते हैं। यहाँ पर प्रशिक्षण की भूमिका बहुत कम है लेकिन कुछ विशेष कौशलों के विकास में जैसे एक विशेष भाषा का प्रयोग या चित्रकारी या गाड़ी चलाना आदि में प्रशिक्षण की भूमिका निर्णायक होती है। लेकिन एक कौशल के लिए प्रशिक्षण की उपयोगिता उस कार्य के संदर्भ में मूलभूत कौशल हेतु परिपक्वन प्राप्त करने पर निर्भर होता है। शारीरिक परिवर्तन वंशानुक्रम एवं पोषकीय कारकों के उत्कृष्ट रुप के कारण होते हैं जबकि उच्च स्तर का चालक-कौशल एवं संज्ञानात्मक क्षमता जो कि विचार एवं सूचना प्रक्रिया और

विभिन्न प्रकार की विशिष्ट योग्यताएँ हैं, ये वंशानुक्रम और परिपक्वन एवं अनुभव की प्रक्रिया के अन्योन्यक्रिया के कारण विकसित होती हैं।

दूसरे व्यक्तियों के साथ अन्योन्यक्रिया और सामाजिक परिस्थितियों की समझ सामाजिक-भावनात्मक क्षमताओं एवं अंतर्वैयक्तिक संबंधों के विकास एवं परिपक्वन में सहायक होते हैं।

शारीरिक क्षमताओं का परिपक्वन व्यक्ति के लिए उपलब्ध वंशानुक्रम, पोषक-तत्व एवं अनुकूल पर्यावरण पर निर्भर करता है। लेकिन, अंततोगत्वा पर्यावरण के द्वारा उपलब्ध कराया गया उद्दीपक क्षमताओं को सामने लाने में निर्णायक होता है। कुछ उद्दीपक कारक जो सही ढंग के पोषक-तत्वों के अलावा विकास में वृद्धि करते हैं, वे-स्वस्थ पर्यावरण, बीमारियों से स्वतंत्रता, प्रेम एवं देखभाल, वयस्क व्यक्तियों के साथ अन्योन्यक्रिया एवं विकासात्मक समस्याओं को पहले ही खोज कर लेते है। ये वंशानुक्रम क्षमताओं की अभिव्यक्ति या अधिकतम परिपक्वन प्राप्त करने में सहायता करते हैं। इसी प्रकार से उद्दीपक एवं समृद्ध पर्यावरण की उपस्थिति अधिकतम सुविज्ञता या कौशल प्राप्त करने में समर्थ बनाती हैं। परिपक्वन एवं कौशल के विकास की ये दोनों प्रक्रियाएँ कुंडलित तरीके से चलती हैं। भाषाई सक्षमताओं का परिपक्वन एवं अग्रिम अधिगम उच्च स्तर के कौशलों को प्राप्त करना संभव बनाता है।

बुद्धि, व्यक्तित्व एवं अन्य क्षेत्रों में व्यक्तिगत विभिन्नता वंशानुगत प्रतिभा एवं अधिगम के सतत् उद्दीपन के बीच लगातार अन्योन्यक्रिया के परिणाम हैं। फिर भी वंशानुक्रम पैमाना विकास को सीमित करता है। अधिकतम लम्बाई जिसे एक व्यक्ति प्राप्त कर सकता है उसके वंशानुगत परिवेश से निर्धारित होती है यद्यपि वह सीमा भी कभी-कभी नहीं पहुँचती है जो कि पर्यावरण में सुविधाओं की कमी के कारण होता है। उसी समय, अधिकतम प्रेरक एवं अधिगम के अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर भी एक व्यक्ति के विकास की सीमा परिपक्वन के द्वारा निश्चित होती है। उदाहरणार्थ, चलने के लिए उत्पत्ति-संबंधी नियम उस बच्चे के पैर की माँसपेशियों के परिपक्व होने के बाद निश्चित होता है, कितना भी अधिक मात्रा में दिया गया पोषक-तत्व या सुविधा बच्चे को जल्दी चलने में मदद नही करेगा। परिपक्वन केन्द्र जिस पर कौशल में महारत हासिल की जा सकती है उसे सीखने की तत्परता कहते हैं। सीखने की विकासात्मक तत्परता अधिगम के अवसर में निर्णायक भूमिका अदा करती है। विकासात्मक तत्परता परिपक्वन के अधीन है। यहाँ पर फिर से अधिगम एवं परिपक्वन स्वतंत्र रुप से कार्य नहीं करते हैं। दोनों विकासात्मक तत्परता उत्पन्न करने के लिए अन्योन्यक्रिया करते हैं। जब एक बच्चा परिपक्वन के कारण सीखने के लिए तैयार होता है (कहते हैं कि विकास प्रान्तस्था में हो रहा है) तब अधिगम के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ, हो रहे अधिगम के संदर्भ में परिपक्वन एवं संभावित उपलब्धियों के साथ अन्योन्यक्रिया करेंगी। जब अनुकूल परिस्थितयाँ उपस्थित नही होती हैं तब अधिगम के

लिए तत्परता की उपलब्धियाँ धीमी हो जाएँगी। इसी प्रकार से, जब बच्चे ने एक कार्य सीखने के लिए परिपक्वता प्राप्त कर लिया है और यह अधिगम के लिए अनुकूल परिस्थितियों की उपस्थिति के साथ-साथ नही चल रही है तब उस कार्य को करने की निपुणता धीमी हो जाएगी। केवल तभी जब कार्य के अधिगम के लिए आवश्यक परिपक्वन या विकासात्मक तत्परता एवं कार्य के अधिगम के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ सह-अस्तित्व में रहती हैं, ऐसी स्थिति में वांछनीय उपलब्धि प्राप्त होगी।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-3

निम्नलिखित कथनों में सही या गलत का निर्धारण कीजिए–

1. बुद्धि, व्यक्तित्व एवं अन्य क्षेत्रों में व्यक्तिगत विभिन्नता वंशानुक्रम प्रतिभा एवं सतत् अधिगम के बीच अनवरत् अन्योन्यक्रिया के कारण होता है।
2. आनुवंशिक रुप से निर्धारित योग्यताएँ, क्षमताएँ एवं विशेषताएँ परिपक्वन के कारण स्पष्ट होती हैं।
3. अनवरत् परिवर्तन/विकास परिमाणवाचक एवं गुणवाचक दोनों परिवर्तनों में निहित है।

1.5 विकास की गति

विकास की गति उस रफ्तार से सम्बंधित है जिससे जीवन काल के साथ-साथ विकास होता रहता है। यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होती है केवल गति के संदर्भ में ही नहीं बल्कि विकास की गति का अलग-अलग तरीका उसी व्यक्ति में उसकी/उसके जीवन में अलग-अलग तरीके से देखा गया है।

कुछ व्यक्ति बचपन के प्रारंभ में कुछ पक्षों जैसे लम्बाई, वजन आदि में धीरे-धीरे विकसित हो सकते है, लेकिन जैसे जैसे वे बड़े होते हैं इसमें तेजी आती है और इसके विपरीत जिनकी बचपन में विकास की गति तीव्र होती है, बाद में धीमी हो सकती है। विकास के अन्य पहलुओं के संदर्भ में जैसे चालक समन्वयन, अमूर्त चिन्तन, भाषा का विकास, सौंदर्य संवेदना, भावनात्मक विकास आदि विभिन्न प्रकार के विकास दृष्टिगोचर हो सकते हैं। विकास की गति भी आनुवंशिक, परिवार/घर का पर्यावरण, सामाजिक-सांस्कृतिक अन्य पर्यावरण से संबंधित कारकों पर निर्भर है जिसकी पूर्ववर्ती भाग में चर्चा हो चुकी है।

विकास के सभी पहलुओं एवं इसके मंद होने में आनुवंशिक कारकों का योगदान पाया गया है। मानव आनुवंशिक संरचना से बहुत अधिक संख्या में विशिष्टताएँ निकलती हैं। फिर भी एक अकेला व्यक्ति उन सभी विशेषताओं का अकेले प्रदर्शन नही कर सकता जिसे आनुवंशिक नियम संभव बनाते हैं। एक व्यक्ति की आनुवंशिक विरासत वह वास्तविक आनुवंशिक दैहिक है जो विरासत से प्राप्त है, जीन-प्ररुप कहलाता है। एक

व्यक्ति के जीन-प्ररुप की अभिव्यक्ति दृश्य-प्ररुप कहलाता है। एक व्यक्ति के पास नीली एवं भूरी दोनों रंग की आँखों के लिए जनन हो सकता है लेकिन नीली आँखें अपगामी होने के कारण छिपी रहती हैं जबकि भूरी आँखे प्रबल होने के कारण व्यक्त हो सकती हैं एवं व्यक्ति के पास भूरी आँखे होंगी। दृश्य-प्ररुप एक व्यक्ति की शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों विशेषताओं को शामिल करता है।

विकास में घर का प्रभाव बहुत रोचक है। उदाहरणार्थ, खान-पान की आदतें (पोषण) जो घर में होती हैं, वे विकास के तरीके को प्रभावित करती हैं। मांसाहारी भोजन करने वाले बच्चों में विकास के दौरान लम्बाई और वजन में आश्चर्यजनक उपलब्धि देखने को मिल चुकी है। क्रमश:, अच्छी तरह से पोषित लड़कियाँ उन लड़कियों की तुलना में जो ठीक प्रकार से पोषक तत्व नहीं पाती है, कम उम्र में वय:सन्धि प्राप्त कर लेती है। घर की संस्कृति के अलावा वय: संधि की प्राप्ति विकास में सांस्कृतिक प्रभाव के उदाहरण को भी उपलब्ध कराती है। गरीब और विकासशील देशों में वय: संधि का प्रारंभ विकसित देशों में वय: संधि की उम्र की तुलना में देर से होता है। विच्छेद परिवारों एवं अन्तर्वैयक्तिक संघर्षो से जूझते परिवारों की लड़कियों में कम तनाव वाले परिवारों की लड़कियों की तुलना में ऋतुस्त्राव जल्दी प्रारंभ हो जाता है।

कुछ विशेषकों का विस्तृत प्रतिक्रिया क्षेत्र होता है जिसका मतलब है कि पर्यावरणीय कारक इन विशेषकों के प्रजनन क्षमता की अभिव्यक्ति को बदल देते हैं एवं अंतर का कारण होते हैं। उदाहरणार्थ, लम्बाई और सामान्य पेशी समूह विकास के विस्तृत क्षेत्र को दिखा सकते हैं जो कि व्यक्ति के पोषकीय स्तर पर निर्भर है। कुछ अन्य विशेषक पर्यावरण में होने वाले व्यापक परिवर्तनों से असंक्राम्य है। ये विशेषताएँ एक विशिष्ट विकासात्मक अवस्था के दौरान अनवरत् विद्यमान रहती हैं, चाहे बच्चे जिन्होंने शैशवावस्था में अत्यंत कुपोषण का अनुभव किया है, उन्होंने प्रारंभ में इन सुविधाओं से वंचित होने के वावजूद आगे चलकर बचपन में सामान्य रुप से सामाजिक एवं संज्ञानात्मक विकास दिखाया है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि वंशानुक्रम एवं पर्यावरण विकास के समय अपने प्रभुत्व के लिए आपस में एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

विकास की गति में विभिन्नता केवल व्यक्तियों के साथ ही घटित नहीं होती है बल्कि विभिन्न अवस्थाओं में एक ही व्यक्ति के साथ भी भिन्न होती है। विकास के इन पहलुओं के बारे में नीचे चर्चा की गई है।

1.5.1 विकास में व्यक्तिगत विभिन्नता

प्रत्येक व्यक्ति अपने जनन विरासत एवं पर्यावरण के अधिगम में अलग-अलग है। एकांडी जुड़वा बच्चे भी व्यक्तित्व एवं व्यवहार में बिल्कुल एक समान नही होते हैं। यह भी पाया गया है कि व्यक्तिगत विभिन्नता जीवन काल के साथ-साथ चलती रहती है। जैसे वे बढ़ते हैं, व्यक्ति विशेषताओं का विशिष्ट समूह विकसित कर लेते हैं जो उन्हें

दूसरों से अलग करता है। उदाहरणार्थ, किशोरावस्था व्यक्तिगत विभिन्नताओं के द्वारा बचपन की तुलना में अधिक विशिष्ट होता है, किशोरावस्था की तुलना में प्रौढ़ावस्था में अधिक विभिन्नता परिलक्षित होती है और इसी प्रकार क्रम चलता रहता है, वयस्क बच्चों की तुलना में केवल अधिक जटिल ही नही होते है बल्कि वे बढ़ते हुए रुप में एक दूसरे से भिन्न होते हैं जब वे विकास के क्रम में आगे की तरफ बढ़ते हैं। जैसा कि जब दो बच्चों को एक ही प्रकार के पर्यावरण में रखा जाता है, वे पर्यावरण से अलग-अलग रुप में ग्रहण करते हैं। इस प्रकार, यह भविष्यवाणी करना अत्यंत कठिन है कि किस प्रकार से दो व्यक्ति एक दी गई परिस्थिति में प्रतिक्रिया करेंगे जबकि उनकी आनुवांशिकता एवं पर्यावरणीय विशेषताओं पर सही प्रकार के पदार्थ उपलब्ध हैं। जबकि प्रत्येक व्यक्ति असाधारण है और उसकी अपनी विकास की गति है, हम, एक शिक्षक एवं अभिभावक के रुप में उनके बारे में अपनी अपेक्षाओं को निर्धारित नहीं कर सकते और उस उम्र के व्यक्ति या समूह के अपने ज्ञान के आधार पर उनके बारे में पूर्णतया निर्णय नहीं ले सकते। इस प्रकार, यह पहचाना जाना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट है एवं व्यक्तिगत विभिन्नता समाज की उन्नति के लिए मंच उपलब्ध करती है जैसे कि विभिन्न प्रकार की योग्यताएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं।

परामर्शदाताओं, अभिभावकों एवं शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे प्रत्येक व्यक्ति के विशिष्ट सामर्थ्य को समझे एवं इसको आगे बढ़ाने में मदद करें न कि एक ही स्तर की उपलब्धियों की सबसे अपेक्षा करें।

विभिन्नताएँ एक ही व्यक्ति में अलग-अलग समय पर विकास की गति को निर्धारित करती हैं। एक व्यक्ति में विकास की गति की इन विभिन्नताओं को अगले भाग में वर्णित किया गया है–

1.5.2 जीवन काल के साथ-साथ विभिन्नताएँ

विकास केवल व्यक्तिगत विभिन्नता की पहचान नही करता है बल्कि व्यक्ति के अन्दर समय के साथ-साथ होने वाले अंतर को भी बताता है। विकास सम्पूर्ण जीवन काल में समान गति से यंत्र की तरह आगे नही बढ़ता है।

उदाहरणार्थ, शैशवावस्था में एक बच्चे की विकास की गति, आने वाली अवस्थाओं में विकास की गति का अनुमान लगाने में निर्धारित नही की जा सकती है। कुछ बच्चे बचपन के प्रारम्भिक समय में भाषा पर धीमी पकड़ बनाते हुए पाए जाते हैं परन्तु अन्य अवस्थाओं में जाकर वे दूसरों के बराबर हो जाते हैं। लम्बाई एवं वजन का विकास भी बचपन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक एक जैसा नही है। विकास की गति विभिन्न अवस्थाओं के लिए जाना जाता है। फिर भी, सभी किशोर एक ही समय तीव्र गति नही दिखा सकते हैं। बाद के वर्षों में अपकर्ष की गति कुछ में तीव्र और कुछ में तीव्र गति से नही हो सकती है जो कि स्वास्थ्य, खान-पान, गतिविधि तरीके और वास्तव में वंशानुक्रम कारकों पर निर्भर है। इस प्रकार या तो व्यक्तिगत या अनेकों

विकासात्मक अवस्थाओं के लिए विकास की एक समान गति नही है। जिस प्रकार से पर्यावरणीय कारकों को व्यक्ति के विकास के लिए छलयोजित ढंग से आगे बढ़ाने में लाया जा सकता है उसे अगले भाग में वर्णित किया गया है।

1.5.3 विकास का पर्यावरणीय उद्दीपन

पर्यावरणीय कारकों जैसे समग्र पोषक तत्व, उद्दीप्त पारिवारिक पर्यावरण, अभिभावकों द्वारा देखभाल, वयस्कों के साथ अन्योन्यक्रिया, घर पर बोली जाने वाली भाषा, आदि के द्वारा विकास को बढ़ाया जा सकता है। बच्चे को दिया जाने वाला भोजन उसकी आवश्यक पोषकों, प्रोटीन, आदि की आवश्यकताओं को पूरा करता है जिसके परिणाम के रुप में शारीरिक रहन-सहन एवं स्वास्थ्य के बेहतर होने के अवसर हैं। भोजन की गुणवत्ता बच्चे की लम्बाई एवं वजन को प्रभावित कर सकती है। इसी प्रकार से अन्य परिस्थितियाँ जैसे अन्योन्यक्रिया के द्वारा अभिभावकीय गुणवत्ता, भावनात्मक लगाव, अनेकों प्रकार के स्थानों के प्रत्येक दर्शन के द्वारा बौद्धिक उद्दीपन, अनुभवों, पुस्तकों, कहानियों, आदि बच्चों के बौद्धिक एवं सामाजिक विकास में वृद्धि करते हैं। फिर भी, इसे स्पष्ट करना चाहिए कि अधिक उद्दीपन उसी प्रकार से हानिकारक है जैसे बच्चों का न्यूनतम उद्दीपन। एक बच्चा जिसे अत्यधिक पोषक भोजन खिलाया जाता है, वह स्थूल हो जाता है, अत्यधिक कहानी की पुस्तकों को पढ़ाना एवं दर्शनीय स्थलों पर घूमना विमुखता, ऊब, अन्यमनस्कता या अन्य गतिविधियों की कीमत पर किसी एक गतिविधि के प्रति अत्यधिक रुचि का कारण हो सकता है। अभिभावकों या देखभाल करने वालों को एक संतुलन का अभ्यास करना है एवं बच्चों को सही ढ़ग से मार्गदर्शन करना है ताकि वांछित गति हासिल की जा सके। एक व्यक्ति को प्रत्यक्ष रुप से उस योग्यता का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करके जो विकसित होने की प्रक्रिया में है, विकास को उद्दीप्त किया जा सकता है। प्रेरक पर्यावरण विकास को आगे बढ़ाते हैं विशेष रुप से जब व्यक्ति परिपक्वन अर्जित कर लेता है एवं मनोवैज्ञानिक रुप से तैयार होता है। विकास की अवधि एवं समय प्रभावशाली परिणामों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण होगी। उदाहरणार्थ, अपरिपक्व बच्चों को अपनी तरह से विकास करने के लिए नहीं छोड़ा जाता है बल्कि अस्पताल में उनकी देखभाल करने वाले उन्हें उनके अंगों को हिलाकर, उन्हें विभिन्न अवस्थाओं में अदल-बदलकर, उनसे बात करके, आदि के द्वारा उद्दीपन करते हैं। इस हस्तक्षेप के कारण ये बच्चे उन बच्चों की तुलना में जिन्हें इस प्रकार से उद्दीप्त नहीं किया गया, उनसे बेहतर गति से विकास करते हैं।

इसी तरह, जब बच्चों को उनके पढ़ने में रुचि उत्पन्न करने के लिए उद्दीप्त किया जाता है वे उन बच्चों की तुलना में जिन्हें इस प्रकार के कार्यक्रमों से परिचित होने का मौका नही मिलता है उनकी तुलना में बहुत जल्दी पढ़ना सीख सकते हैं। जो बच्चे वयस्कों के साथ रहते हैं या जिनसे अभिभावक पूर्व-विद्यालय अवस्था में लगातार बातें करते हैं वे बोलना जल्दी सीख लेते हैं। इसी तरीके से जब मांसपेशियों के अभ्यास के

लिए उद्दीपन दिया जाता है तब बच्चों में चालक विकास तीव्र गति से होने की संभावना होती है। प्रौढ़ावस्था के दौरान उत्तेजक मानसिक एवं शारीरिक गतिविधियों में लगे रहने से अपकर्ष करने के प्रभावों में गति महत्वपूर्ण रुप से कम पाई गई है। हमने चर्चा की है कि किस प्रकार से विकास बहुत सारे कारकों जैसे उत्पत्ति-संबंधी, परिवार, सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण आदि से प्रभावित होता है। ये परिवर्तन व्यक्तियों एवं जीवन काल पर्यन्त साथ-साथ चलने वाले विकास के परिवर्तनों के बीच अत्यधिक अंतर उत्पन्न करते हैं। आप विकास के अनेको कीर्तिमानों के विषय में अगले भाग में पढ़ेंगे।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-4

1. पर्यावरणीय उद्दीपन क्या है?
2. अत्यधिक उद्दीपन का क्या प्रभाव पड़ता है?
3. किस प्रकार से उद्दीप्त पर्यावरण मानव विकास को आगे बढ़ाते हैं? एक उदाहरण के साथ वर्णन कीजिए।

1.6 विकास के मील के पत्थर

किसी एक पूर्व के भाग में हम सतत् बनाम असतत् विकास पर चर्चा कर चुके हैं। यद्यपि हम विश्वास करते हैं कि विकास एवं विभिन्न प्रकार के कौशलों को अर्जित करना जैसे–चालक, भाषा एवं विचार आदि सतत् विकास से संबंधित है जो हो सकता है कि दृश्य न हो जब यह कौशल उत्पन्न हो रहे हैं। जैसे जैसे ये परिपक्व होते हैं वे अचानक प्रकट होते हुए प्रतीत होते हैं जो इस बात की पुष्टि करता है कि यहाँ अचानक एवं नया विकास है। सभी प्राणी इस प्रकार के विकासात्मक परिवर्तनों एवं विकास के तरीके से गुजरते हैं। जीवन-काल के साथ-साथ मानव विकास में दृश्य परिवर्तन उस समय के अनुसार कुछ निश्चित कौशलों एवं योग्यताओं के रुप में अस्पष्ट तरीके से दिखाई पड़ते हैं यद्यपि व्यक्तियों में विकास की गति में अंतर होता है।

दृष्टिगोचर विकासात्मक परिवर्तनों के विभिन्न तरीके सभी प्राणियों में विशेष अवस्थाओं या अवधि के साथ सम्बद्ध होते हैं। विकास-विचारकों ने इन विशेषताओं का प्रयोग एक से दूसरी अवस्था की पहचान करने के लिये किया है। इन अवस्थाओं को शैशवावस्था, बचपन (बाल्यावस्था), किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था का नाम दिया गया है। हर अवस्था की अपनी विशेष विशेषता होती है जिसे विकासात्मक कार्य कहते हैं। शारीरिक स्वास्थ्य, योग्यता, स्वभाव, संवेग, रुचियाँ एवं अन्य विशेषताओं के प्रतिमान जो इन अवस्थाओं के विकास के प्रतिरुप हैं, व्यक्तियों एवं समूहों के साथ विशेष रुप से भिन्न होते हैं। फिर भी, इनमें समरुपता एवं समानता है। उदाहरणार्थ, अधिकतर बच्चे गर्भधारण के नौ महीने के पश्चात् जन्म लेते हैं लेकिन कुछ अपवादात्मक मामलों

में बच्चे सात-आठ अथवा दस महीने में भी जन्म लेते हैं। विकास के समय, परिणाम एवं गुण में अंतर होता है। कुछ बच्चे जन्म के समय जड़वत मूल सहज क्रिया के साथ नही पैदा होते हैं जो उन्हे अपनी माँ के स्तनों से दूध पीने में समर्थ बनाता है। कुछ बच्चे साल, डेढ़ साल तक भी चलने या खड़े होने में सक्षम नही हो पाते हैं। लेकिन अनुपात रुप में अधिकतर बच्चे मोटे तौर से विशेष गुणों को अर्जित कर लेते हैं या उन कार्यों को करना सीख लेते हैं जो नीचे दिए गए विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं उस अवस्था के लिए निर्धारित समय सीमा के आधार पर संबंधित होते हैं। इस प्रकार, विकास की ये अवस्थाएँ प्राप्त किए गए विकासात्मक कार्यों पर आधारित हैं। प्रत्येक व्यक्ति इन अनुक्रमिक विकासात्मक अवस्थाओं से गुजरता है। विकास की अवस्थाएँ है:–

1. जन्म-पूर्व अवस्था– गर्भधारण से प्रारंभ होकर जन्म के समय समाप्त होती है।
2. शैशवावस्था– जन्म से प्रारंभ होकर दो वर्ष पर समाप्त होती है।
3. बाल्यावस्था– दूसरे वर्ष की समाप्ति से प्रारंभ होकर करीब बारह वर्ष पर समाप्त होती है।
4. किशोरावस्था– तेरहवें वर्ष से प्रारंभ होकर अठारहवें वर्ष पर समाप्त होती है।
5. प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था– अठारहवें वर्ष की समाप्ति पर प्रारंभ होकर चालीसवें वर्ष पर समाप्त होती है।
6. अधेड़ अवस्था– चालीस वर्ष पर शुरु होकर साठ वर्ष में समाप्त होती है। हाल में ही अधेड़ अवस्था उत्तरी अमेरिका एवं यूरोप में पैंसठ वर्ष की समाप्ति पर निर्धारित की गई है जो कि वरिष्ठ होने एवं सेवानिवृत्ति की उम्र के आधार पर है।
7. वृद्धावस्था– साठ वर्ष की समाप्ति पर प्रारंभ होकर मृत्यु के साथ समाप्त होती है।

प्रत्येक अवस्था से दूसरी में जाने पर प्रत्येक व्यक्ति को पूर्वावस्था की विकासात्मक अवधि में उस अवस्था के लिए आवश्यक समर्थता एवं कौशलों में कुशलता प्राप्त करके उस समय को सफलतापूर्वक पूरा करना होता है। इन कौशलों एवं सक्षमताओं को विकासात्मक कार्य कहते हैं। विकास को एक अवस्था से दूसरी में समेकित किया जाता है एवं विकास के प्रचलन को संग्रह करके आगे बढ़ाते हैं जो पूर्व अवस्थाओं में पहले ही बताया जा चुका है। जब एक व्यक्ति पूर्व अवस्था की अपेक्षित उन्नति एवं परिपक्वता को अर्जित किए हुए बिना ही विकासात्मक अवधि की अगली अवस्था में प्रवेश करता है वह अपरिपक्व ही रहेगा/रहेगी एवं उसे समायोजन में परेशानी का सामना करना पड़ेगा।

1.6.1 जन्म-पूर्व अवस्था

जीवन काल विकास को समझने के लिए जन्म-पूर्व अवस्था महत्वपूर्ण है। गर्भ में बढ़ता हुआ बच्चा जिस प्रकार का आनुवंशिक स्वरुप प्राप्त करता है, गर्भावस्था के दौरान माता का भावनात्मक अनुभव, इस समय माता का पोषकीय स्वास्थ्य स्तर, सभी बच्चे के विकास की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। जन्म-पूर्व अवस्था में विकास बच्चे को फायदा या नुकसान पहुँचा सकता है।

यह महत्वपूर्ण है कि आनुवंशिक असामान्यता उचित समय पर पहचान ली जाय ताकि बच्चे को बाद में आने वाली जटिल परेशानियों से सुरक्षित किया जा सके। अन्य मातृक स्थितियों जैसे–HIV, नशे का प्रयोग, धूमपान या शराब का प्रयोग आदि जन्म से पूर्व ही बच्चे के भविष्य के विकास में परेशानियों का कारण बनते हैं। एक HIV से प्रभावित माता उस संक्रमण को बच्चे में बढ़ा सकती है। गर्भावस्था के दौरान धूम्रपान एवं अनुचित कार्य बच्चे के मस्तिष्क के विकास को विकृत कर सकते हैं।

1.6.2 शैशवावस्था

जन्म बच्चे के लिए एक सदमा है। एक सुरक्षित एवं अनुकूल गर्भ के सही-सलामत एवं स्थिर पर्यावरण से बच्चे को जबरदस्ती एक कठिन अस्थिर पर्यावरण में डाल दिया जाता है जहाँ उसे स्वत: साँस लेना एवं खाना होता है। यद्यपि विकास सतत् है लेकिन बच्चा एक नई अवस्था में पहुँचता है जो करीब दो वर्ष का होता है। शिशु जन्म लेने के समय से ही बाह्य पर्यावरण से समायोजन एवं अधिगम प्रारंभ कर देता है। माता के साथ बंधकर रहने एवं सुरक्षा की भावना तथा भावनात्मक सहारा जो परिवार के अन्य सदस्य प्रदान करते हैं, इन सब पर विकास निर्भर होता है। शिशु के संचारी यंत्र, पदार्थों एवं चेहरों को केन्द्रित करने एवं जानने के लिए उसकी सक्षमता, बोधात्मक या संचारी चालक क्षमताएँ धीरे-धीरे विकसित होती रहती हैं। वे अपने संवेदनाओं एवं चालक गतिविधियों के बीच समन्वय विकसित कर लेते हैं। बच्चा धीरे-धीरे यह समझना सीख लेता है कि पदार्थ आँखों से ओझल होने पर भी अन्तर्ध्यान नही होते हैं। इस अवस्था के विकास में भाषा का विकास महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है।

शिशु का भावनात्मक विकास उसके प्रसन्न या अप्रसन्न व्यवहार को व्यक्त करने में होता है। एक बच्चा जिसकी अच्छी तरह से देखभाल की जाती है, ज्यादातर समय प्रसन्न रहेगा जो उसके सकारात्मक भावनात्मक विकास की कहानी स्वयं कहता है। इस अवस्था में सामाजिक विकास माता, पिता एवं अन्य देखभाल करने वालों के साथ भावनात्मक रुप से लगाव विकसित करने से संबंधित है। बच्चा अपने परिवार पर विश्वास करना सीखता है एवं उनके साथ सम्बन्धों का विकास करता है। यह पहला संबंध होता है जहाँ बच्चा सामाजिक नियमों एवं मान्यताओं का सम्मान करना

सीखता है। बच्चे की माँग के प्रति अभिभावक की प्रतिक्रिया एवं भावनात्मक अभिव्यक्ति व्यक्तित्व के विकास के लिए नींव डालते हैं। बच्चा स्वतंत्रता एवं स्वशासन की तरफ बढ़ता रहता है। देखभाल, गर्मजोशी एवं प्रेम इस अवस्था में बहुत आवश्यक है। वैवाहिक सद्भाव या माता-पिता के बीच अलगाव एवं जिस प्रकार का वातावरण घर में रहता है उसका बच्चे की मानसिक स्थिति एवं सामाजिक अभिवृत्तियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। पिता के द्वारा माता को डाँटते एवं चिल्लाते हुए अवलोकन करके बच्चा भी अपनी वैवाहिक जिन्दगी में उसी प्रकार के व्यवहार को प्रदर्शित कर सकता है।

1.6.3 बाल्यावस्था

बाल्यावस्था बारह वर्ष की उम्र तक होती है। यह अवधि शैशवास्था से अलग होती है क्योंकि बच्चा अपने शारीरिक विकास के कारण अधिक स्वतंत्र हो जाता है, बिना सहायता के चलता है और धीरे-धीरे दौड़ना, कूदना एवं अधिक चालक नियंत्रण एवं समन्वयन अर्जित करना सीखता है। वे खेलने एवं दूसरों के साथ अन्योन्यक्रिया के योग्य हो जाते हैं। कुशल चालक समन्वयन धीरे-धीरे अर्जित कर लेते हैं जो अब तीव्र गति से होती है जैसा कि बच्चा चारों ओर घूम सकता है और पदार्थ को पहचान सकता है। वह अपने अनुभवों को संकेत के द्वारा प्रकट करने में सक्षम हो जाता है एवं उन्हें मौखिक रुप से भी बता पाता है। फिर भी वह वास्तविकता एवं अनुभवों को अलग नही कर सकता है। इसका अर्थ है कि जो कुछ वह जानता या विश्वास करता है, वह उसके लिए वास्तविकता है। यदि वह कुछ चीज चाहता है तब वह सोचता है कि इसे किया जा सकता है। यह व्यावहारिक आत्मकेन्द्रितवाद बच्चे के सात वर्ष का होने तक रहता है। लेकिन जैसे ही उसका संज्ञानात्मक विकास आगे बढ़ता है, वह प्रश्न करता है कि वह जो चाहता है और जो वास्तविकता है, उनके बीच विसंगति क्यों है। यह अवस्था चार-पाँच वर्षों तक रहती है। उदाहरणार्थ, बच्चा अपने पिता से पूछता है कि बादल नीचे क्यों नहीं आते हैं।

उस समय तक जब बच्चे लगभग सात वर्ष के होते हैं प्रश्न करने की यह आदत धीरे-धीरे तर्क शक्ति की तरफ ले जाती है एवं वे मूर्त पदार्थों के साथ कारण स्थापित करने में समर्थ हो जाते हैं। वे पदार्थ को स्पष्ट कर सकते हैं। बच्चा पदार्थ के स्पष्ट विशेषताओं के विषय में विचार करने योग्य हो जाता है न कि अपनी कल्पना से सोचता है। इस अवस्था में, वयस्कों के साथ अन्योन्यक्रिया जो बच्चे के विचारों को उद्दीप्त करने में समर्थ हैं, वस्तुनिष्ठ विशेषताओं की ओर संकेत करते हैं एवं उसको प्रश्न करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं तथा उसकी/उसके बौद्धिक विकास को आगे बढ़ाते हैं। बच्चे की अबोधगम्यता को दूर करने के लिए वयस्कों द्वारा प्रदर्शित धैर्य जो उनके विचारों को स्पष्ट करने के लिए बहुत आवश्यक है, संज्ञानात्मक विकास की गति को बढ़ाने में परिणित होता है। सांस्कृतिक कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा

करते हैं। एक बच्चा जिसे सांस्कृतिक अन्तरों के विषय में जानकारी नही है वह परेशान हो सकता है। फिर भी धैर्य एवं बच्चे के प्रश्नों पर अनुक्रिया उनके सामाजिक रुप से विकसित होने एवं अपने पर्यावरण को तेजी से समायोजित करने में सहायता करता है।

पूरे बाल्यावस्था के दौरान माता-पिता की भूमिका बहुत निर्णायक होती है। गर्मजोश एवं उत्साही माता-पिता दृढ़तापूर्वक बच्चों को अनुशासित करते हैं एवं कठिन परिश्रम के लिए प्रेरित करते हैं। वे बच्चे को स्वयं के लिए सम्मान एवं दूसरों का सम्मान करने के योग्य बनाते हैं। जो माता-पिता बहुत कठोर हैं या बहुत आसक्त हैं वे अपने बच्चों में आत्म-नियंत्रण विकसित करने में असफल रहते हैं। जिसके परिणामस्वरुप बच्चा सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है और उसका आत्म-विश्वास बहुत कम हो जाता है। साथियों, भाई-बहनों एवं अन्य महत्वपूर्ण वयस्कों की भूमिका सही ढंग से व्यक्तिगत-सामाजिक कौशलों के विकास के लिए निर्णायक होती है।

सांस्कृतिक कारकों द्वारा अदा किए जाने वाले भूमिकाओं के विषय में भी समझना होगा क्योंकि इनमें से कुछ सीखे गए अभिवृत्तियों एवं मूल्यों के लिए आवश्यक हैं जिनका शैक्षिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन पर बाद में एक वयस्क के रुप में अधिक समय के लिए परिणाम हेतु होता है। उदाहरणार्थ, आत्म-अनुशासन, कठिन-परिश्रम एवं लिंग रुझान में कमी न केवल विद्यालय की उपलब्धियों एवं साथियों के साथ संबंध को प्रभावित करेगा बल्कि कार्यक्षेत्र से संबंधित एवं वैवाहिक प्रसन्नता भी प्रभावित होगी।

बाल्यावस्था वह समय है जब बच्चा नीतिपरक एवं नैतिक व्यवहारों को सीखता है। वयस्क उनके साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं, उनके पर्यावरण की संरचना करते हैं एवं उस व्यवहार का सामना करते हैं जो नियम एवं मानदण्डों को तोड़ने एवं उनके नैतिक विकास के रुप में होता है। फिर भी, यदि वयस्क असामाजिक व्यवहार को अनदेखा करते हैं एवं सामाजिक मूल्यों एवं मानदण्डों को सीखने के लिए उनके पर्यावरण की संरचना नही करते हैं तब नैतिक विकास पीछे रह जाता है। करीब सात वर्ष तक का बच्चा आत्म केन्द्रिकता के द्वारा बढ़ता है इसलिए वह क्या पसंद करता है और क्या नहीं, इस विषय में इन्कार उसके नियम को तोड़ने में पुरस्कार या दण्ड के रुप में प्रयोग किया जा सकता है। उस समय जब बच्चा सात-आठ वर्ष का हो जाता है, वह समझ सकता है कि नियम या मानदण्डों को तोड़ने अथवा कोई अवांछनीय व्यवहार करने से दण्ड मिलेगा। फिर भी, नैतिक विकास के क्षेत्र में अनुसंधान प्रकट करते हैं कि नैतिक मूल्यों एवं मानदण्डों को प्रोत्साहित करने में सकारात्मक एवं अनुकूल व्यवहार प्रभावशाली होते हैं। इस अवस्था में नीतिपूर्वक निर्णय लेने की क्षमता के विकास में सहायता से यह बच्चे को अगली अवस्था में केन्द्रित रहने के योग्य बनाता है।

1.6.4 किशोरावस्था

यह वह अवस्था है जब बच्चा विकास एवं अंत:स्त्राविक गतिविधि में तेजी का अनुभव करने लगता है जो कि शरीर के आकार, शरीर के समानुपात में परिवर्तन, प्राथमिक एवं द्वितीयक लैंगिक विशिष्टताओं का विकास जैसे वक्षस्थल का विकास, लड़कियों में मासिक एवं लड़कों में दाढ़ी, पेशी, रात्रिक स्वप्नदोष आदि परिवर्तनों के संदर्भ में व्यक्त होता है। ये परिवर्तन बहुत अधिक उलझन एवं घबराहट का भी कारण होते हैं। आत्म-निर्धारण चिन्ता का विषय बन जाता है। किशोर की आत्म-अवधारणा इस समय अस्थिर हो जाती है। वह अपने कॅरियर संभावनाओं के बारे में कोशिश करने, विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण को समझने एवं अपने वैयक्तिकता को बनाए रखने तथा स्वतंत्र रुप से निर्णय लेने की सक्षमता आदि की प्रक्रिया में होता है। जब तक कि व्यक्ति एक अनुकूल कॅरियर में स्थापित होने के आधार पर परिवार की जिम्मेदारी का निर्वाह करने के लिए तैयार हो, बढ़ती हुई लैंगिकता पर नियंत्रण हेतु सामाजिक दबाव एवं तुष्टिकरण में बिलम्ब तनाव एवं चिन्ता उत्पन्न करता है।

किशोर, वयस्कों की तरह ही उच्च स्तर की तर्कशक्ति में समर्थ होता है। उससे इसी प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा की जाती है लेकिन माता-पिता अभी उसे पूर्ण स्वतंत्रता देने के लिए तैयार नहीं होते हैं जिसके परिणामस्वरुप कभी-कभी परिवार में बहुत तनाव उत्पन्न हो जाता है जो छोटे सदस्यों में अपराध की भावना उत्पन्न करता है। किशोर को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, स्वतंत्रता की सीमा, परिवार के बड़े एवं अन्य लोगों के साथ व्यवहार करने के लिए नियम एवं मान्यताएँ, ये सारी शर्तें उन पर अचानक लागू कर दी जाती हैं। यह सलाह उन्हे जल्दी देना शुरु करना चाहिए ताकि इस अवस्था में संकट से बचा जा सके। भूमिका में उलझन या पहचान का संकट, विद्रोह बनाम भूमिका की स्पष्टता, उत्तरदायित्व, सामाजिक नियमों को स्वीकार करना, एक व्यक्ति को किशोरावस्था से प्रौढ़ावस्था में ठीक प्रकार से परिपक्व होने में समर्थ बनाता है।

किशोर को अपने शरीर-गठन एवं आकार के बदलने को स्वीकार करना होता है, विपरीत लिंग के सदस्यों के साथ स्वीकार करने योग्य व्यवहार के स्तर को स्थापित करना, माता-पिता एवं अन्य महत्वपूर्ण वयस्कों से भावनात्मक स्वतंत्रता प्राप्त करना बौद्धिक कौशलों का विकास एवं सामर्थ्य की अवधारणा, सामाजिक रुप से मान्यता प्राप्त मूल्यों का विकास करना एवं मित्रों की सहमति से वयस्कों की सहमति के लिए लालसा। इस प्रकार किशोरावस्था अपने बौद्धिक, सामाजिक विकास को कॅरियर में प्रवेश हेतु लागू करने, अपने सामाजिक-भावनात्मक विकास को मजबूत करने एवं प्रौढ़ावस्था के लिए तैयार करने का समय है। अगली अवस्था प्रौढ़ावस्था की अगले भाग में चर्चा की गई है।

1.6.5 प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था जीवन काल की सबसे लम्बी अवधि है। यह सामान्य रुप से प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था, मध्य प्रौढ़ावस्था एवं उत्तर-परवर्ती प्रौढ़ावस्था या 'वृद्धावस्था' में उप विभाजित है। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था 18 वर्ष से 40 वर्ष तक, मध्य प्रौढ़ावस्था या अधेड़ अवस्था करीब 40 वर्ष से 60 वर्ष तक एवं उत्तर-परवर्ती प्रौढ़ावस्था या वृद्धावस्था करीब 60 वर्ष से मृत्यु-पर्यन्त तक रहती है।

प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यावसायिक एवं पारिवारिक सामंजस्य बहुत कठिन होता है क्योंकि ज्यादातर युवा वयस्कों के पास सीमित आधार होता है जिस पर उन्हें सामंजस्य स्थापित करना होता है। यह इन समायोजनों के लिए आवश्यक भूमिकाओं की नवीनता के कारण होता है। व्यक्तित्व का विकास एवं सहनशीलता का गुण, स्वीकृति, उत्तरदायित्व, देखभाल आदि परिवार एवं व्यवसाय दोनों में समायोजन के लिए आवश्यक हैं। फिर भी, सांस्कृतिक विविधाताएँ निर्णायक हो सकती हैं जो कि पारिवारिक जीवन के लिए तैयारी करने हेतु जरुरत पर निर्भर हैं। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में व्यावसायिक समायोजन में सबसे बड़ी समस्या एक व्यवसाय के चुनाव में एवं नौकरी में स्थायित्व प्राप्त करने तथा कार्य परिस्थिति के अनुसार समायोजन में निहित है। किस तरह से सफलतापूर्वक पुरुष एवं महिलाएँ इस समांजस्य के अनुरुप अपने को बनाते हैं, यह उनके उपलब्धियों, व्यक्तित्व की विशेषताओं, नौकरी में स्वेच्छा से परिवर्तन एवं नौकरी से प्राप्त होने वाली संतुष्टि के आधार पर पता लगाया जा सकता है। बहुत सारी परिस्थितियाँ वैवाहिक सामंजस्य की कठिनाई में सहयोग करते हैं जिनमें से सबसे सामान्य विवाह के लिए सीमित तैयारी, कम उम्र में विवाह, मिश्रित विवाह, प्रणय-निवेदन में कमी, विवाह में पहचान की कमी एवं निर्धारित भूमिकाओं में परिवर्तन हैं। विवाह में सामान्य समायोजन समस्याओं में से– पति या पत्नी से समायोजन, लैंगिक समायोजन, वित्तीय एवं ससुराल में समायोजन सबसे कठिन है।

व्यक्ति के जीवन में माता-पिता के रुप में कार्य करना संकट के समान हो जाता है क्योंकि इसके लिए अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं भूमिकाओं में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। यह विशेष रुप से महिलाओं के लिए सत्य है जिन्हें अपने कॅरियर को भी छोड़ना पड़ सकता है जिसके लिए उन्होंने प्रशिक्षण लिया है एवं जिसमें वे सफल रह चुकी हैं। अभिभावकत्व के साथ समायोजन को प्रभावित करने वाले बहुत सारे कारकों में सबसे महत्वपूर्ण हैं–गर्भावस्था एवं अभिभावकत्व की तरफ अभिवृत्ति, माता-पिता की उम्र, बच्चे का लिंग, जन्म-पूर्व अपेक्षाएँ, जन्म-पूर्व उपयुक्तता की भावना, अभिभावकत्व के लिए आवश्यक, परिवर्तित भूमिका की अभिवृत्ति एवं बच्चे की मानसिक स्थिति। माता एवं पिता द्वारा अपने अभिभावकत्व को अभिवृत्ति एवं भावनात्मक रुप से निभाना, बच्चे के विकास एवं पारिवारिक प्रसन्नता में निहित है।

अधेड़ अवस्था की अवधि के दौरान शारीरिक परिवर्तनों में समायोजन- आकार, शारीरिक क्रियाएँ एवं लैंगिकता के क्षेत्रों में विशेष रुप से कठिन है। इस अवस्था में ही महिलाओं में रजोनिवृत्ति एवं पुरुषों में संकट काल (रजोनिवृत्ति) आता है। औरतों में रजोनिवृत्ति लक्षण कुछ अंशों में (estrogen) इस्ट्रोजिन वंचित होने के कारण एवं कुछ पर्यावरणीय तनाव जो कि मूल रुप में मनोवैज्ञानिक है। पुरुषों में संकट काल (रजोनिवृत्ति काल) लक्षण शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं के संयोग के कारण होता है जो प्राय: अभिवृत्ति, व्यवहार एवं आत्म-मूल्यांकन में परिवर्तन की तरफ ले जाता है।

1.6.6 अधेड़ अवस्था

अधेड़ अवस्था में स्वभाव में परिवर्तन पहले वयस्क अवस्था में हो रहे परिवर्तनों की तुलना में कम परिलक्षित होता है। वे प्राय: ज्यादातर भूमिकाओं में परिवर्तन का परिणाम होते हैं। माता-पिता, दादा-दादी बन जाते हैं। वे अपने बच्चों के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में बहुत कम भूमिका निभाते हैं। प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की तुलना में अधेड़ अवस्था में धर्म अथवा अध्यात्म में अधिक रुचि बढ़ जाती है। यह प्राय: व्यक्तिगत एवं सामाजिक रहन-सहन तथा भावनात्मक रुप में निहित हो सकता है।

1.6.7 वृद्धावस्था

वृद्धावस्था करीब 60 वर्ष के नजदीक प्रारंभ होती है। इस अवस्था के दौरान होने वाले कुछ शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के द्वारा शारीरिक एवं सामाजिक गतिविधि में कमी एवं दैनिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता में कमी होने की संभावना होती है। शारीरिक परिवर्तनों में पेशी-समूह में कमी एवं कमजोरी, कमजोर दृष्टि एवं शारीरिक गतिविधि में कमी शामिल है। भावनात्मक संवेदना एवं असुरक्षा की भावना बढ़ती है। जिसके परिणामस्वरुप इस अवस्था के दौरान दूसरों पर शारीरिक एवं आर्थिक निर्भरता अधिक हो जाती है। इस अवस्था में नए सामाजिक संबंध बनाना मुश्किल हो जाता है। जबकि इस अवस्था में कार्य सेवा से निवृत्ति एवं परिवार के संरचना में परिवर्तन के कारण आराम का समय बढ़ जाता है लेकिन इस अतिरिक्त समय को नई रुचियों एवं गतिविधियों में लगाना कठिन होता है।

इस प्रकार नवजात शिशु धीरे-धीरे एवं अनवरत रुप से शारीरिक, बौद्धिक एवं नैतिक क्षमताओं को विकसित करता रहता है। बच्चे की सक्षमता एवं कौशल एक समान गति से बढ़ता रहता है यद्यपि विकास दिखाई दे सकता है और दृश्य नहीं भी हो सकता है। यह जीवन काल के दौरान विशिष्ट समय में नई विशेषताओं एवं संज्ञानात्मक कौशलों के रुप में अचानक अभिव्यक्त होते हैं। एक विशेष समय के लिए निर्धारित विशेषताएँ उस अवस्था के विकास को परिभाषित करती हैं। बाद की अवस्थाओं के विकास के दौरान बहुत तीव्र गति से शारीरिक विकास धीरे-धीरे विचारों में गुणात्मक परिवर्तन,

भविष्य की योजना, समन्वयन एवं समय परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित हो जाते हैं जो प्रौढ़ावस्था के समय स्पष्ट रुप से अभिव्यक्त होता है। ये गुणात्मक परिवर्तन कॅरियर परिपक्वता एवं परिवार तथा अन्य लोगों के साथ घनिष्टता के संदर्भ में संबंधों में व्यापकता लाते हैं। वृद्धावस्था के दौरान क्षमताओं का अपकर्ष प्रत्यक्ष रुप से दिखाई देता है साथ ही साथ अनुभव एवं दृष्टिकोण भी। इस प्रकार जीवन काल के दौरान विविध योग्यताएँ अनवरत उत्पन्न एवं विलीन हो जाती है।

क्रियाकलाप-1
विभिन्न अवस्थों के विकास के संदर्भ में व्यक्तियों से बात कीजिए कि वे किस तरह की कठिनाइयों का अनुभव कर रहे हैं एवं एक व्यक्ति प्रत्येक विकासात्मक अवस्था में जिन समस्याओं एवं मुद्दों का सामना करता है, उसकी एक सूची बनाइए।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-5

1. मानव विकास की अवस्थाओं का उल्लेख कीजिए।
2. किशोरावस्था के दौरान विकास से जुड़े हुए अनेकों मुद्दों का उल्लेख कीजिए।
3. प्रौढ़ावस्था एवं अधेड़ अवस्था के दौरान किए गए कम से कम दो महत्वपूर्ण समायोजनों का उल्लेख कीजिए।
4. निम्नलिखित विकल्पों में से रिक्त स्थान को भरिए–

   अ. वाक् कौशल, समाजीकरण

   ब. भाषा की विषय-वस्तु

   स. Partunate, Neonate (पारचुनेट, नियोनेट)

   द. समाजीकरण

   क. झंझावात एवं तनाव

   ख. अंत:स्त्राविक

   (i) जन्म पूर्व अवस्था ———— एवं ———— विभाजित की गई है।

   (ii) शैशवावस्था ———— प्रारंभ होने का समय है।

   (iii) प्रारम्भिक बाल्यावस्था में ———— एवं ———— तीव्र गति से बढ़ते हैं।

   (iv) उत्तर बाल्यावस्था के दौरान ———— अपकर्ष की ओर अभिमुख होता है।

   (v) ———— परिवर्तन के कारण वय: सन्धि होती है।

   (vi) किशोरावस्था ———— अवधि माना जाता है।

1.7 परामर्श हेतु जीवन काल विकास का तात्पर्य

परामर्शदाता इस प्रकार के सेवार्थियों का सामना करते हैं जो अपनी शैक्षिक, सामाजिक, भावनात्मक एवं व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं को बताते हैं। एक विशेष अवस्था में होने वाली इन समस्याओं का मूल उनकी विकासात्मक प्रक्रियाओं में हो सकता है। परामर्शदाता को केवल वर्तमान विकासात्मक अवस्था एवं ग्राहकों की चारित्रिक विशिष्टताओं को ही नही देखना होता है बल्कि उनके विकास के पिछले इतिहास को भी देखना पड़ता है। शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक निपुणता एवं सक्षमता में होने वाले परिवर्तन क्रमिक रुप से होते हैं एवं प्रत्येक अवस्था में इन कौशलों पर महारत हासिल करना महत्वपूर्ण है। यदि किसी क्षेत्र में कमी रह जाती है या विकास में बिलम्ब होता है तब यह अगले चरण के विकास में भी समस्या उत्पन्न कर सकता है। इसलिए परामर्शदाताओं को वर्तमान कठिनाइयाँ या विकासात्मक प्रक्रिया को सेवार्थी के सम्पूर्ण जीवन काल के संदर्भ में देखना होता है और देखना है कि पहले की समस्याएँ भी ठीक प्रकार से देखी गई हैं। एक जीवन काल विकासात्मक प्रक्रिया सुझाव देती है कि सेवार्थी की कोई भी समस्या को परामर्शदाता के द्वारा समग्र रुप में देखना चाहिए न कि केवल एक पृथक रुप में। बहुत सारी समस्याएँ जो समानुपात से बाहर प्रतीत होती है, वह वास्तव में विकासात्मक क्रम के व्यतीत होते चरण का केवल परिणाम हो सकती है अथवा एक समस्या जिस पर ध्यान नही दिया जा रहा है, वह बच्चे के जीवन में गंभीर असर डाल सकता है। विकासात्मक चरणों एवं उनकी विशेषताओं को समझने से परामर्शदाता आसामान्य से सामान्य व्यतिक्रम में भेद करने में सक्षम होते हैं। निम्नलिखित उदाहरण को व्यतिक्रम के प्रभाव को समझने एवं ठीक प्रकार से इनका सामना करने के लिए देखिए–

केस-1

4 वर्षीय अनिल नर्सरी विद्यालय में जाने से प्राय: इन्कार कर देता था और जबरदस्ती करने पर रोने लगता था। माता-पिता ने सोचा कि घर पर दादा-दादी के अत्यधिक दुलार का यह परिणाम था। अनिल के साथ वे सख्ती से पेश आए और जबरदस्ती विद्यालय भेज दिया। वह बहुत रोया परन्तु किसी तरह विद्यालय में रुकने लगा। धीरे-धीरे, वह बहुत दब्बू एवं शांत हो गया जिसे माता-पिता ने सुविधाजनक पाया और सोचा कि उसने विद्यालय में सामंजस्य कर लिया था। लेकिन वह जैसे एक कक्षा से दूसरी कक्षा में आगे बढ़ता रहा, उसका प्रदर्शन कभी भी आगे नही बढ़ा। वह प्राय: बीमार पड़ जाता था एवं पेट दर्द की शिकायत करता था एवं कभी भी मित्र नही बनाया। विद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के बाद अनिल जो अब 20 वर्ष का था, नर्सरी में अपने अध्यापकों के डर के बारे में सुस्पष्ट

हो गया था जो बच्चों को पीटा करते थे। उसने अपने डर एवं चिन्ता को विजित किया और कालेज के दौरान अध्ययन में बेहतर प्रदर्शन किया। फिर भी अनिल सामाजिक परिस्थितियों में कभी भी विश्वस्त नही हो सका। यदि उसके माता-पिता ने समझा होता कि माता-पिता से अलग होने की चिन्ता से छुटकारा पाया जा सकता है यदि विद्यालय एक अच्छा, गर्मजोश एवं देखभाल वाला स्थान है तो अनिल अपने सम्पूर्ण विद्यालयीय वर्षों को घुटन भरी भावनाओं के साथ न जिया होता। उसकी उपलब्धियों की कहानी अलग रही होती।

दूसरी तरफ सुनील एक बहुत शांत बच्चा था जो बहुत अधिक नही बोलता था। उसके माता-पिता नौकरी में थे और उसके साथ बहुत कम वक्त व्यतीत कर पाते थे। वह पढ़ाई में बहुत अच्छा था लेकिन बर्हिगामी नही था।

उसके माता-पिता उसकी उन्नति से प्रसन्न थे। जब वह बड़ा हुआ तो वह कॅरियर में सफल रहा परन्तु कभी भी स्वस्थ सामाजिक संबंध विकसित करना नहीं सीख पाया। वह सामाजिक परिस्थितियों में बहुत तकलीफदेह महसूस करता था।

1.8 सारांश

मानव विकास जीवन काल परिपेक्ष्य में अपने सतत् एवं असतत् प्रक्रिया के रुप में देखा जाता है। विकास शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में एकीकृत ढंग से होता है। एक व्यक्ति के जीवन में विकास की गति अलग-अलग समय में अलग-अलग प्रकार से हो सकती है एवं यह प्रत्येक के साथ भी अलग प्रकार से हो सकती है। विकास वंशानुक्रम कारकों एवं पर्यावरणीय दोनों से प्रभावित होता है। विकास की समझ एवं इस पर होने वाले विविध प्रभाव हमें उन कारकों की पहचान करने में समर्थ बनाएंगे जो मार्ग विरोध उत्पन्न करता है या जो विकास की गति को बढ़ा सकता है। आनुवंशिक कारक जो जटिलता उत्पन्न कर सकते हैं, उन पर पहले से ही ध्यान दिया जा सकता है बजाय इसके कि अनदेखी के कारण उन्हें संभालना मुशिकल हो जाय। इसी प्रकार से पर्यावरणीय कारकों की आवश्यकता जो बच्चों को लाभ दे सकती है जैसे–समृद्ध एवं उद्दीप्त पर्यावरण, माता-पिता द्वारा गर्मजोशी एवं देखभाल या सख्त अनुशासन या भावनात्मक सहारा आदि का पता लगाया जा सकता है। विकास जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के द्वारा प्रकट होता है जो गर्भधारण से लेकर जन्मपूर्व अवस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, अधेड़ अवस्था एवं वृद्धावस्था तक रहता है। इन अवस्थाओं की विशिष्ट विशेषताएँ एवं कार्य जो प्रत्येक अवस्था में सफलता हेतु अर्हता प्राप्त करता है एवं अगली अवस्था में महारत हासिल करने के लिए दशा निर्धारित करता है, इन सब के विषय में चर्चा की गई है। विकास की प्रकृति एवं स्वरुप इन अवस्थाओं के साथ-साथ बदलती रहती है। जीवन काल परिप्रेक्ष्य के तात्पर्य को परामर्श में विकास हेतु भी चर्चा की गई है।

आत्म-मूल्यांकन अभ्यास

1. विकास क्या है? मानव विकास पर जीवन काल परिप्रेक्ष्य की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. उन मुद्दों पर चर्चा कीजिए जो विकास से संबंधित हैं।
3. व्यक्तियों के विकास में किस प्रकार से विविध घटक व्यतिक्रम उत्पन्न करते हैं।
4. किस प्रकार से पर्यावरणीय प्रसंग एक बच्चे के विकास को प्रभावित करता है? अपने उत्तर को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
5. यौवनारम्भ एवं किशोरावस्था के समय एक व्यक्ति की प्रबल मनोवैज्ञानिक चिन्ताएं क्या हैं?
6. व्याख्या कीजिए कि किस प्रकार से किसी एक अवस्था का विकास बाद में आने वाली अवस्थाओं के विकास को प्रभावित करता है।

आत्म-मूल्यांकन अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

1. विषयवस्तु में विकास का अर्थ शामिल करना चाहिए। निम्नलिखित बिन्दुओं को भी मानव विकास में जीवन काल परिप्रेक्ष्य की विशेषताओं को शामिल करना चाहिए।
   - विकास एक जीवनपर्यंत प्रक्रिया है।
   - विकास मानवता के लिए सार्वभौम है।
   - विकास बहु आयामी है।
   - विकास प्रासंगिक है।
   - विकास सतत् एवं असतत् है।
2. निम्नलिखित बिन्दु इसमें शामिल करना चाहिए–
   - वंशानुक्रम, पर्यावरण एवं विकास
   - विकास सतत् एवं असतत् है।
   - विकास एवं संबंधित घटक।
   - व्यक्तिगत विभिन्नता
   - जीवन काल के साथ-साथ विभिन्नता
   - पर्यावरणीय उद्दीपन
3. लम्बाई, वजन, भोजन की आदतें आदि के प्रसंग में उत्तर का विश्लेषण करने की कोशिश कीजिए।
4. उत्तर विभिन्न घटकों जैसे आनुवंशिकता, परिवार/घर, सामाजिक-सांस्कृतिक आदि संबंधित होना चाहिए। वंशानुक्रम एवं पर्यावरण के बीच संबंध पर बल देना चाहिए।

सामान्य विषयों जैसे भोजन, लम्बाई, व्यवहार, आदि से उदाहरण लिया जा सकता है।

5. पहचान, स्वतंत्रता, घनिष्टता, लैंगिकता एवं उपलब्धियों के मुद्दों पर संक्षिप्त व्याख्या के साथ केन्द्रित करना।
6. विकास की विभिन्न अवस्थाओं के संदर्भ में अपने उत्तर का विश्लेषण करने की कोशिश कीजिए।

आत्म-निरीक्षण अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-1

1. स 2. द 3. ब 4. अ

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-2

1. परिवार, शिक्षक, साथी, पास-पड़ोस आदि।
2. जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले बाह्य घटक, सुरक्षा की भावना एवं स्वास्थ्य संसाधनों की सामान्य उपलब्धता, देखभाल, शिक्षा हेतु अवसर जो बदले में पारिवारिक पर्यावरण एवं अन्ततोगत्वा बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-3

1. सही 2. गलत 3. गलत

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-4

1. समग्र पोषण, पारिवारिक पर्यावरण, माता-पिता द्वारा देखभाल, वयस्कों के साथ अन्योन्यक्रिया, घर में बोली जाने वाली भाषा आदि के संदर्भ में उद्दीपन।
2. अत्यधिक उद्दीपन हानिकारक होता है जैसे कि एक बच्चे को अत्यधिक पोषक भोजन खिलाने से स्थूल हो जाना, अत्यधिक पुस्तकें पढ़ना, घूमना अरुचि, ऊब, अन्यमनस्कता या एक गतिविधि में जरुरत से अधिक रुचि।
3. उद्दीप्त पर्यावरण मानव विकास को आगे बढ़ाते हैं, विशेषरुप से जब एक बच्चा परिपक्वता एवं मनोवैज्ञानिक तत्परता दोनों अवस्था में होता है। उदाहरणार्थ, अपरिपक्व बच्चे तीव्र गति से विकास करते हैं जब अस्पताल में देखभाल करने वाले उनके अवयवों को हिलाकर, विभिन्न अवस्थाओं में घुमाकर, उनसे बातचीत आदि के द्वारा उद्दीप्त करते हैं।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-5

1. मानव विकास की अवस्थाएँ हैं–
   - जन्मपूर्व अवस्था
   - शैशवावस्था
   - बाल्यावस्था

- किशोरावस्था
- प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था
- अधेड़ अवस्था
- वृद्धावस्था

2. किशोरावस्था के दौरान विकास से संबंधित अनेकों मामले हैं– पहचान से संबंधित सामाजिक एवं भावनात्मक परिवर्तन, स्वतंत्रता, घनिष्टता एवं लैंगिकता।
3. व्यावसायिक एवं पारिवारिक समायोजन प्रौढ़ावस्था के दौरान करने वाले दो महत्वपूर्ण समायोजन हैं। शारीरिक परिवर्तन एवं रुचियों में परिवर्तन के साथ समायोजन अधेड़ अवस्था में करने वाले दो महत्वपूर्ण समायोजन हैं।
4. (i) स (ii) द (iii) अ (iv) ब (v) क (vi) ख

पठनीय पुस्तकें

1. बेक, एल. ई. (2003), *चाइल्ड डेवलपमेन्ट* (छठा संस्करण)। प्रेंटिस-हाल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
2. फेल्डमैन, आर. एस. (2000), *डेवलपमेन्ट एक्रॉस दि लाइफ स्पैन* (द्वितीय संस्करण) प्रेंटिस - हाल, न्यू जर्सी।
3. हेट्रिन्गटन, ई. एम. एण्ड पर्के, एस. डी. (1993), *चाइल्ड साइकोलॉजी: ए कन्टेम्परि विवप्वाइंट* (चतुर्थ संस्करण)। मैकग्रा-हिल, इन्क., न्यूयॉर्क।
4. हरलॉक, ई. बी. (1980), *डेवलपमेन्टल साइकोलॉजी: ए लाइफ स्पैन एप्रोच* (पाँचवा संस्करण)। टाटा मैकग्रा-हिल पब्लिसिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।
5. रथस, एस. ए. एंड नेविड, जे. एस. (1980), *एडजस्टमेंट एंड ग्रोथ: द चैलेन्जेस ऑफ लाइफ।* हॉल्ट, राइनहार्ट एंड विन्सटन, न्यूयॉर्क।
6. सैन्टॉक, जे. डब्ल्यू. (2001), *चाइल्ड डेवलपमेंट (नवम संस्करण)।* मैकग्रा-हिल, न्यूयॉर्क।
7. वालेस, पी. एम. एंड गोल्डस्टिन, जे. एच. (1994)। *ऐन इंट्रोडक्शन टू साइकोलॉजी।* ब्रॉउन एंड बेन्चमार्क, मेडिसन।

2

व्यक्तित्व के विकास एवं प्रकृति पर परिप्रेक्ष्य

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 व्यक्तित्व क्या है?
2.3 व्यक्तित्व के ज्ञान के विषय में उपागम
2.3.1 प्ररुप एवं विशेषक उपागम
2.3.2 मनोगतिक उपागम
2.3.3 परामर्श में व्यावहारिक एवं संज्ञानात्मक उपागम
2.4 मानवतावादी उपागम
2.5 आत्म एवं चेतना की अवधारणा
2.5.1 विकास एवं समायोजन हेतु अर्थापत्ति
2.6 सारांश
आत्म- मूल्यांकन अभ्यास
आत्म- मूल्यांकन अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु
आत्म- निरीक्षण अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

2.0 परिचय

पूर्व इकाई में आप मानव विकास के विभिन्न क्षेत्रों एवं विकास किस प्रकार से आगे बढ़ता है, इस विषय में पढ़ चुके होंगे। अनेकों घटक जैसे जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक जो विकास को प्रभावित करते हैं और मानसिक दशा, अभिव्यक्ति एवं व्यक्तियों की अन्योन्यक्रिया में अन्तर उत्पन्न करते हैं। ये अन्तर विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत विशेषताओं एवं व्यक्ति की असाधारणता का आधार बनते हैं।

आप समझ सकते हैं कि हम एक व्यक्ति को केवल देखकर के उसके व्यक्तित्व के बारे में जान एवं समझ नहीं सकते हैं। जिस ढंग से वह प्रतिक्रिया करता/करती है, अभिव्यक्त करते हैं एवं अपने आस-पास के लोगों के साथ संबंध स्थापित करते हैं, वह हमें व्यक्तित्व के ज्ञान में सहायता करता है।

इस इकाई में आप व्यक्तित्व के सिद्धांतों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे। ये सिद्धांत जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक पहलुओं पर केन्द्रित हैं। व्यक्तित्व के अध्ययन के संदर्भ में आप पश्चिमी एवं पूर्वी प्रथाओं के बीच विभिन्नताओं का भी परीक्षण करेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित बिन्दुओं को समझने में समर्थ होंगे–

- व्यक्तित्व की मुख्य विशेषताओं की पहचान करना।
- व्यक्तित्व को परिभाषित करना।
- व्यक्तित्व के ज्ञान के लिए विभिन्न अभिगमों की सूची तैयार करना।
- वस्तुनिष्ठ एवं व्यक्तिनिष्ठ अभिगमों को श्रेणीबद्ध करना।
- व्यक्तित्व सिद्धांत के प्रमुख मनोगतिक प्रतिमानों को स्पष्ट करना।
- प्रत्येक सैद्धान्तिक प्रतिमान के आधारभूत सिद्धांतों की पहचान करना।
- ''आत्म'' के विचार को विभिन्न अवधारणाओं के साथ संबंधित करके व्याख्या करना।
- व्यक्ति के विकास हेतु अर्थापत्ति स्पष्ट करना।

2.2 व्यक्तित्व क्या है?

व्यक्तित्व- यह पारिभाषिक शब्द "Persona" नामक शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है- ''मुखावरण''। यूरोप में, ग्रीक एवं रोमन अभिनेता अपने किरदारों का मुखावरण पहनते थे जब वे मंच पर जाते थे। प्राय: एक अभिनेता एक से अधिक किरदारों की परिचय मंच पर निभाता था और वह जिस मुखावरण को पहनता था वह उसके द्वारा अभिनय किए जाने वाले किरदार के विषय में सूचित करता था।

व्यक्तित्व एक जटिल संरचना है। यह विभिन्न लेखकों के द्वारा उनके समय में विभिन्न तरीकों से पारिभाषित किया गया है। अधिकतर मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व को एक व्यक्ति के विशिष्ट एवं सामान्य रुप से स्थायी व्यवहार के ढंग को मानते हैं। व्यक्तित्व इस प्रकार यह बताता है कि आप कौन है, आप क्या रह चुके हैं एवं आप क्या हो जाएँगे। यह योग्यता, सामर्थ्य, अभिवृत्तियों, मूल्यों, अपेक्षाओं एवं आदतों का एक संयोजन है जो प्रत्येक व्यक्ति को एक विशिष्ट व्यक्ति बनाता है। अब हम व्यक्तित्व के कुछ सुनिश्चित विशेषताओं को विस्तार से बताएँगे।

कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं –

- व्यक्तित्व में एक व्यक्ति के बारे में सब कुछ शामिल होता है (जैसे-शारीरिक गठन, लक्षण, भावनाएँ, विचार/संज्ञान, स्मरणशक्ति एवं व्यवहार)।
- व्यक्तित्व केवल विशेषक या विशेषताओं का समूह ही नही है बल्कि वह प्रक्रिया है जिसका वे अनुसरण करते हैं।
- व्यक्तित्व स्थायी या निश्चित नही है, यह गतिशील है, यह पर्यावरण से समायोजन बनाते समय अनवरत् परिवर्तित होता रहता है एवं सामंजस्य करता है।

- व्यक्तित्व बहुआयामी है।
- व्यक्तित्व आत्म-संज्ञान के रुप में अपनी एक मुख्य विशेषता को प्रदर्शित करता है।
- व्यक्तित्व एक विकासात्मक प्रक्रिया है जो कि वंशानुक्रम, परिपक्वन, अधिगम एक पर्यावरण की एक जटिल अन्योन्यक्रिया है।
- व्यक्तित्व व्यवहार में तरीके का एक समूह है जो काफी समय तक साथ रहता है।
- व्यक्तित्व छोटे-छोटे अदृश्य तरीके से बदलता रहता है, तथापि परिवर्तन केवल काफी दिनों के बाद दिखाई देता है।

व्यक्तित्व को उसके चरित्र के साथ नही तुलना करना चाहिए। चरित्र का तात्पर्य व्यक्ति के मूल्यों में निहित होता है जबकि व्यक्तित्व एक व्यक्ति का वर्णन करता है।
ऊपर उल्लिखित व्यक्तित्व की विशेषताओं में से, आप देखेंगे कि एक परिभाषा निकलकर आती है।
व्यक्तित्व संज्ञान, भावना एवं व्यवहारों का एक जटिल तरीका एवं संगठन है जो व्यक्ति के जीवन को दिशा दिखाता है। यह एक विकासात्मक प्रक्रिया है जो वर्तमान एवं भविष्य का निर्माण करने के लिए अनुभवों एवं स्मरणशक्ति पर आधारित है।

क्रियाकलाप-1

आप एक एकीकृत व्यक्तित्व की असंगठित में से प्रभेद किस प्रकार करेंगे? उन तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए जिसे आपने एक व्यक्ति में अवलोकन किया है–

अ- संघटित व्यक्तित्व	ब-असंघटित व्यक्तित्व
1.	1.
2.	2.
3.	3.

उपर्युक्त वर्णित क्रियाकलाप से आप समझ पाएंगे कि जिन व्यक्तियों का संघटित व्यक्तित्व होता है वे बुद्धिमत्ता, संवेगात्मक एवं सामाजिक रुप में बेहतर समायोजन करते हैं एवं स्वस्थ संबंधों का आनन्द लेते हैं। असंघटित व्यक्तित्व वाले लोगों में अपने बौद्धिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक व्यवहार में अननुमेय की प्रवृत्ति होती है जिसके परिणामस्वरुप उनके दोषपूर्ण व्यवहार के कारण कभी-कभी लोगों को उनके साथ संबंध रखना मुश्किल हो जाता है।
व्यक्तित्व एवं सामान्य संघटित विशेषताओं को समझने के लिए उपागम हेतु बहुत अधिक संख्या में तरीके हैं। आप अगले कुछ भागों में व्यक्तित्व विशेषकों के इन उपागमों एवं संघटनों के विषय में पढ़ेंगे।

2.3 व्यक्तित्व को समझने के लिए उपागम

व्यक्तित्व को समझने के लिए विविध प्रकार के उपागम हैं। इसमें से अधिकतर उपागमों को चार समूहों में विभाजित किया जा सकता है– प्ररुप एवं विशेषक, मनोगतिक, व्यावहारिक एवं मानवतावादी। अब हम व्यक्तित्व को समझने के लिए इन उपागमों पर चर्चा करेंगे।

2.3.1 प्ररुप एवं विशेषक उपागम

इन उपागमों का अनुसरण करने वाले मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्वों को प्ररुपों में श्रेणीबद्ध करने के लिए बहुत से तरीकों का अनुमोदन किया है। एक मनोवैज्ञानिक कार्ल युंग (1963) के अनुसार, एक व्यक्ति या तो अन्तर्मुखी (शर्मीला एवं आत्म-केन्द्रित जिसका ध्यान अन्दर की तरफ निदेशित होता है) या एक बहिर्मुखी (साहसी एवं निर्गामी जिसका ध्यान बाहर की तरफ निदेशित होता है) है।

दो हृदयरोगवैज्ञानिकों – मेयर फ्रिडमैन एवं रे रोसेनमैन (1974) ने अपने प्रेक्षण के आधार पर जैसे या तो ''प्ररुप अ'' व्यक्तित्व या ''प्ररुप ब'' व्यक्तित्व में व्यक्तियों के वर्गीकरण को प्रस्तावित किया है। प्ररुप अ के व्यक्ति महत्वाकांक्षी, उच्च स्तर के प्रतिस्पर्द्धी, उपलब्धि-अभिमुख एवं संघर्षशील होते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों में समय की अत्यावश्यकता, चिरकालिक क्रोध या विद्वेष होता है। आपको यह जानकर रुचिकर लग सकता है कि इनमें उच्च रक्तचाप, अम्लता एवं हृदयघात विकसित होने का खतरा रहता है। इनकी तुलना में, प्ररुप ब व्यक्तित्व के लोग आरामदायक, वास्तविक होते हैं एवं कठिन लक्ष्य नही निर्धारित करते हैं। इस प्रकार, प्ररुप अ व्यक्तित्व के लोगों से संबंधित रोगों की संभावनाएँ उनमें बहुत कम होती है।

हैंस आइसेन्क (1965) ने प्ररुप पारिभाषिक शब्द का प्रयोग सह संबंधित प्ररुपों या व्यक्तित्व आयामों, विशिष्ट रुप से अंतर्वृत्ति-बहिर्वृत्ति (इ), तंत्रिकावाद-स्थायित्व (एन) एवं मनोवैश्लेषिकता (पी) के निर्धारण में प्रयोग किया है। बहिर्वृत्ति का आयाम स्थूल रुप से बताता है कि आप कितने निर्गामी एवं सामाजिक हैं। तंत्रिकावाद चिंता-परेशानी या मनोदशा को पकड़ता है जबकि मनोवैश्लेषिकता का आयाम असंवेदशील, अपेक्षित या दूसरों के प्रति क्रूर व्यवहार की आदत को प्रस्तुत करता है।

प्ररुप उपागम के साथ मुख्य समस्या यह है कि यह मानव व्यक्तित्व की विशिष्टता एवं जटिलता की व्याख्या करने में बहुत एकांगी है। यद्यपि प्ररुपों में व्यक्तित्व को अत्यधिक सरल बनाने की आदत होने पर भी प्राय: वे लोगों को एक नाम देने में आशुलिपि की तरह प्रयोग किए जाते हैं जिनमें सामान्य रुप से कई मुख्य विशेषक होते हैं। एक व्यक्तित्व प्ररुप एक विस्तृत श्रेणी है लेकिन लोग व्यक्तित्व विशेषकों का एक संयोजन प्रदर्शित करते हैं। अब, हमें कुछ विशेषक सिद्धांतों को देखना चाहिए।

एक व्यक्ति की विशिष्टता का वर्णन करने के लिए विशेषक उपागम में अधिक क्षमता है। इस उपागम के अनुसार, यद्यपि व्यक्ति एक दूसरे से फिर भी वे एक व्यापक अलग प्रकार की परिस्थितियों के साथ-साथ सामंजस्यपूर्ण व्यवहार करते हैं। विशेषक सिद्धांत निर्धारित करते हैं कि किस प्रकार लोग भिन्न होते हैं, विशेषरुप से विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में विशेष प्रकार से प्रतिक्रिया करने हेतु अपने पूर्वानुकूलन में भिन्न होते हैं ये सिद्धांत मुख्य रुप से व्यक्ति की विशेषताओं जैसे- स्पष्टवादिता, शर्मीलापन, दयालुता, विश्वसनीयता एवं इसी प्रकार की अन्य विशेषताओं पर बल देते हैं जो व्यक्तित्व के स्थायी आयाम हैं जिसके समानांतर लोगों में भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार विशेषक सापेक्षिक रुप में सुस्पष्ट एवं विशिष्ट रुप में व्यवहार करने की आदत है जब एक विशेष प्रकार की परिस्थिति का सामना करना होता है।

गॉर्डन आलपोर्ट (1961) नामक मनोवैज्ञानिक ने कई प्रकार के विशेषकों का तादात्म्य स्थापित किया है। उनके अनुसार, सामान्य विशेषक एक संस्कृति के अधिकतर सदस्यों द्वारा अपनाई गई विशषताएँ हैं जबकि व्यक्तिगत विशेषक एक व्यक्ति के विशिष्ट व्यक्तिगत गुणों को वर्णित करता है।

आलपोर्ट ने प्रमुख विशेषकों, केन्द्रीय विशेषकों एवं द्वितीयक विशेषकों में भी भेद किया है। एक प्रमुख विशेषक इतना आधारभूत होता है कि उस विशेषक के अनुसार एक व्यक्ति के सभी क्रियाकलापों का पता लगाया जा सकता है। कुछ लोगों में ही प्रमुख विशेषक की विशेषता होती है। गाँधी जी की सादगी एवं अब्राहम लिंकन का न्याय प्रमुख विशेषकों के उदाहरण हैं। व्यक्ति के व्यवहार या सभी क्रियाकलापों में इन प्रमुख विशेषकों का प्रभाव प्रत्यक्ष रुप से देखा जा सकता है, इतना अधिक कि उस गुण को उस व्यक्ति के नाम से जाना जाता है जैसे गाँधी जी की सादगी। प्रमुख विशेषक व्यक्तित्व की मुख्य गुण हैं। प्रमुख विशेषक एक व्यक्ति के विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं। विश्वास, रचनात्मकता, सहयोग की भावना या सामाजिकता, चेतना आदि को कुछ व्यक्तिगत परिभाषित करने वाली विशेषताओं के रुप में वर्णित किया जा सकता है। यद्यपि ये इन व्यक्तियों की प्रमुख विशेषताओं के रुप में प्रतीत हो सकती हैं परन्तु ये उतनी आधारभूत नहीं हैं जितनी कि प्रमुख विशेषक हैं। प्रमुख विशेषक, द्वितीय विशेषकों की तुलना में अधिक अनुकूल होती हैं। इनकी तुलना में, द्वितीयक विशेषक कम अनुकूल होती हैं, यह विशेषरुप से एक व्यक्ति का बाह्य पक्ष होता हैं। ये विशेषक हैं जैसे कि–''आइसक्रीम पसन्द करता है'' या ''आयातित सामान पसंद करता है।''

एक अन्य मनोवैज्ञानिक कैटेल (1965) ने पता लगाने का प्रयास किया कि किस प्रकार विशेषक आन्तरिक रुप से जुड़े हैं। उसने उन विशेषताओं का अध्ययन किया जो व्यक्तित्व के दृश्य क्षेत्रों का निर्माण करते हैं और इन्हें पृष्ठ विशेषक कहा जाता है। उसने ध्यान दिया कि पृष्ठ विशेषक प्राय: झुण्ड या समूह में प्रकट होते हैं। वास्तव में,

कुछ विशेषक प्राय: एक साथ इतना अधिक बार प्रकट होते हैं कि वे एक विशेष विशेषक को निरुपित करते प्रतीत होते हैं। कैटेल ने व्यक्तित्व में अंतर्निहित इस प्रकार की विशेषताओं को मूल विशेषक कहा है। उन्होंने एक सांख्यिकीय तकनीक का उपयोग किया है जिसे विश्लेषण कहते हैं। यह पृष्ठ विशेषकों को समूह में करने के लिए है जो मनोरंजनप्रिय एवं बातूनी जैसे रुप में लगातार साथ-साथ पाया जाता है। इस प्रकार से ये पृष्ठ विशेषक मूल विशेषकों में परिणित कर दिए जाते हैं।

हाल के अनुसंधान से निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तित्व के केवल पाँच मूलभूत आयाम हैं- बहिर्मुखता (बातूनी, सामाजिक, आमोद-प्रमोद के प्रति रुझान, स्नेही), सहमतिशीलता (सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना, गर्मजोशी से मिलना, विश्वास करना एवं सहयोग करना), अंतर्विवेकशीलता (उन्मुखता, निर्भरता, कर्मठता एवं दूरदर्शिता), तंत्रिका ताप (चिंता, असुरक्षा, अपराध-प्रवृत्त एवं आत्म से अभिज्ञ) तथा अनुभवों के लिए खुलापन (साहसी, असादृश्य, असाधारण रुप से व्यापक अभिरुचि का प्रदर्शन एवं कल्पनाशील)।

जैसा कि आप देख सकते हैं कि इन पाँचों कारकों में से प्रत्येक कई विशेष विशेषकों का संयोजन प्रस्तुत करते हैं। इन्हें पाँच मुख्य विशेषक-(बृहत् पाँच कारकों) या पंच-कारक मॉडल के नाम से जाना जाता है।

अलग किए गए एकांडी जुड़वा बच्चों के आनुवंशिक अध्ययनों से पता चलता है कि वंशानुक्रम का वयस्क व्यक्तित्व विशेषकों में महत्वपूर्ण योगदान है। एकांडी जुड़वा बच्चों एवं अन्य नजदीकी रिश्तेदारों पर किए गए अन्य अध्ययनों से पता चलता है कि बुद्धि, कुछ मानसिक व्यतिक्रम, मनोदशा एवं अन्य जटिल गुण भी वंशानुक्रम से प्रभावित होते हैं। ये विशेषक जो एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं, कभी-कभी संवेगात्मक समस्याओं जैसे-चिंता, अपराध की भावना, असुरक्षा आदि को उत्पन्न करते हैं। ये विशेषक परामर्शदाताओं के द्वारा मिनेसोटा पक्षीय व्यक्तित्व या अन्य यंत्र से परीक्षण किये जाते हैं जो अनेकों व्यक्तित्व विशेषकों को निर्धारित करते हैं। जब सेवार्थी के इन व्यक्तित्व विशेषकों के बारे में परामर्शदाताओं को जानकारी प्राप्त हो जाती है तब वे व्यक्ति के ध्यान को इन विशेषकों की तरफ खींच सकते/सकती हैं एवं चर्चा कर सकती हैं कि इन विशेषकों के प्रतिनिधित्व के कारण किस प्रकार का समस्यात्मक व्यवहार घटित हो सकता है और इन व्यवहार के तरीकों के बारे में उनमें चेतना का विकास एवं प्रारुपिक विशेषकों की अभिव्यक्ति को बदलने में उनकी सहायता कर सकते हैं जो परेशानी उत्पन्न करते हैं।

अब हम देखते हैं कि व्यक्तित्व को समझने के लिए प्ररुप एवं विशेषक उपागम के अतिरिक्त और कौन-कौन से उपागम हैं।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-1

1. व्यक्तित्व की किन्ही पाँच विशेषताओं के विषय में लिखिए।

   _____

   _____

   _____

2. व्यक्तित्व के बृहत्-पंच कारकों की पहचान कीजिए।

   _____

   _____

   _____

2.3.2 मनोगतिक उपागम

ये उपागम अचेतन प्रयोजनों पर केन्द्रित करते हैं जो आसानी से नही पहचाने जाते हैं। ये प्रयोजन सामाजिक असहमति के कारण सामान्य रुप से नही अपनाए जाते हैं। इस प्रकार के प्रयोजन जैसे घृणा, आक्रामकता एवं लैंगिक विचलन आदि इस क्षेत्र में माने जाते हैं। मनोगतिक उपागमों में फ्रायड, युंग एवं एडलर के द्वारा दिए गए तीन उपागमों के बारे में अब हम चर्चा करेंगे।

फ्रायड का मनोवैश्लेषिक सिद्धांत : सिगमन्ड फ्रायड (1933, 1976) का मनोवैश्लेषिक सिद्धांत व्यक्तित्व प्रेरणा एवं मनोवैज्ञानिक व्यतिक्रमों को प्रारम्भिक बाल्यावस्था के प्रभाव पर केन्द्रित करके व्याख्या करने का प्रयास किया है। उन्होंने अचेतन प्रयोजनों एवं द्वन्दों तथा लोगों के द्वारा अपने लैंगिक एवं आक्रमक लालसा का सामना करने के लिए उपयोग करने वाले तरीकों के महत्त्व पर बल दिया है।

फ्रायड के मनोवैश्लेषिक सिद्धांत के तीन भाग हैं जो कि संक्षिप्त रुप से नीचे वर्णित किए गए हैं।

(i) व्यक्तित्व की संरचना : फ्रायड ने व्यक्तिगत मन की एक मिश्रित संरचना के रुप में तीन तत्वों में संकल्पना किया है। इनके नाम हैं– इदम् या इड (Id), अहं (Ego) एवं पराहम् (Superego)। जन्म के समय केवल इदम् उपस्थित रहता है। इदम् में मूल प्रवृत्तियाँ निहित होती हैं जिनका उद्देश्य प्रसन्नता की खोज करना है। अहं वास्तविक संसार का बोध कराता है। पराहम् करीब-करीब एक साथ ही अस्तित्व में आता है। यह माता-पिता एवं प्रभावी व्यक्तियों की सहमति एवं अहसमति को प्रस्तुत करता है। यह ''चेतन'' एवं अहं-आदर्श'' के रुप में प्रस्तुत किया जाता है। यह मानदण्ड निर्धारित करता है एवं इदम् को नियंत्रित करने में अपनी कमजोरी एवं असक्षमता के लिए अहम् को कार्य के लिए ले जाता है। यद्यपि इदम्, अहं एवं पराहम् तीनों के कार्य अलग-अलग हैं फिर भी एक स्वस्थ

व्यक्तित्व के लिए उन्हे एक अच्छी टीम की तरह सद्भावपूर्वक कार्य करना होता है। इन तीनों पक्षों के बीच संतुलित कार्य व्यक्तित्व की गतिशीलता है जिसकी अगले भागों में चर्चा की गई है।

(ii) **व्यक्तित्व गतिविज्ञान एवं चेतना का स्तर** : फ्रायड ने अचेतन की अवधारणा का प्रयोग यह व्याख्या करने के लिए किया कि लोग विवेकहीन तरीके से कार्य क्यों करते हैं। उन्होंने ज्ञान के तीन आधारभूत स्तरों का प्रस्ताव किया– चेतन, अवचेतन एवं अचेतन। चेतन स्तर पर हम अपने एवं अपने विचारों के चारों तरफ निश्चित चीजों के बारे में जागरुक रहते हैं। अवचेतन स्तर पर स्मृति एवं विचार होते हैं जिसके बारे में हमें पता चल जाता है यदि हम उस पर कुछ क्षण विचार करते हैं। उदाहरणार्थ, आपका जन्मदिन कब है अथवा आपने लंच में क्या लिया है। अचेतन अवस्था की दबी हुई स्मृतियों को पुन: प्राप्त करना कठिन है क्योंकि वे चिंता उत्पन्न करती हैं जैसा कि आपने अपना पर्स कब खो दिया। फिर भी आप ''अचानक मुँह से निकल जाने'' एवं स्वप्नों के द्वारा इन अचेतन अवस्थाओं की झलक देख सकते हैं।

अहम् लगातार दबाव में रहता है क्योंकि इसे प्रसन्नता के लिए इदम् के आदेश को संतुष्ट करना होता है एवं नैतिक व्यवहार के लिए पराहम् के आदेश को मानना पड़ता है। यह चिंता एवं द्वन्द की तरफ ले जाता है– खुशी प्राप्त करे या नैतिकतापूर्ण व्यवहार करे, उदाहरणार्थ, आप मित्र के साथ फिल्म देखने जाने के लिए अपनी तैयारी को छोड़ना चाहते हो। इन कष्टकर भावनाओं को कम करने के क्रम में, अहं कुछ रक्षा युक्तियाँ प्रयोग करता है। अब हम इन अहं रक्षा युक्तियों का वर्णन देखेंगे जो किसी परिस्थिति में हमारी प्रतिक्रिया को संचालित एवं सुनिश्चित करते हैं।

विस्थापन : एक व्यक्ति अपनी भावनाओं को मूल स्त्रोत से दूसरे लक्ष्य की तरफ अनुप्रेषित करता है। उदाहरणार्थ, आप अपने शिक्षक से बहुत नाराज हैं परन्तु अपने क्रोध को उनसे व्यक्त नही कर सकते हो हैं आप घर जाते हो एवं छोटे से छोटे बहाने पर आप रोना या चिल्लाना शुरु कर देते हो यदि आपकी माँ कुछ कहती है। इस प्रकार की परिस्थिति में आप अपने क्रोध की प्रतिक्रिया को शिक्षक से माँ की तरफ विस्थापित कर रहे हो क्योंकि आप अपनी माँ से आजादी ले सकते हो परन्तु शिक्षक से नही। यह चेतन प्रतिक्रिया नही है बल्कि यह अपने आप से घटित होती है।

युक्तिकरण : अपने एवं अपने कार्यों को उचित ठहराने के लिए अनेकों प्रकार के तर्क प्रस्तुत करना। इसका तात्पर्य है किसी महत्वहीन कार्य के लिए तर्कपूर्ण व्याख्या करना जो आपके साथ हुआ है और आप स्वयं को दोषारोपण एवं अपराध से मुक्त करना चाहते हो। उदाहरणार्थ, जब आप परीक्षा में निम्नस्तरीय निष्पादन के बाद कहते हो कि

अध्यापक ने पक्षपात किया था या प्रश्न बहुत कठिन थे बजाय इसके कि आप अपने सही ढ़ंग से प्रयास न कर पाने की कमी को जानने की कोशिश करें।

प्रक्षेपण : अस्वीकृतयोग्य संवेगों या भावनाओं को दूसरों पर आरोपित करना। चिंता को दूर करने के लिए हम अपने अस्वीकृत किए जाने वाले विचारों एवं भावनाओं को दूसरों पर आरोपित कर सकते हैं। आप अपने पिता से नफरत करते हो लेकिन यह आपकी चेतना द्वारा स्वीकार किए जाने योग्य नही है इसलिए आप विश्वास करते हैं कि आपके पिता आपसे नफरत करते हैं।

प्रतिक्रिया निर्माण : भावनाओं को इसके विपरीत दिशा में मोड़ना। परेशान करने वाली भावनाओं एवं विचारों को विपरीत रुप में अभिव्यक्त करना। अचेतन रुप में आप पूर्णतया अपने माता, पिता या बच्चे को नापसंद या नफरत कर सकते हैं लेकिन आप उनके लिए अत्यधिक प्रेम महसूस कर सकते हैं। एक कर्मचारी जो अपने बॉस से बहुत नाराज है, वह उनके प्रति दयालु एवं उदारता के साथ पेश आ सकता है। इस प्रकार के उदाहरण प्रायः तंत्रिका-व्यवहार में मिलते हैं।

अस्वीकरण : संतर्जक (अशुभ) विचारों एवं परिस्थितियों को स्वीकार करने से इनकार करना। आशा के विपरीत अत्यन्त अशुभ समाचार सुनने पर कोई प्रायः यह मानने एवं विश्वास को तैयार नही होता कि यह घटित हो चुका है। किसी को घटना की अनिवार्यता को पहचानने में कुछ समय लगता है। कोई यह महसूस करता रहता है कि यह गलत समाचार ही होगा।

दमन : संतर्जक (अशुभ) विचारों को अपनी जानकारी से हटाना एवं इसकी यादों को निकालना। अपनी जानकारी के बिना ही यह अवचेतन अवस्था में संचालित होता है। निश्चित तौर से कष्टकर भावनाओं अथवा यादों का दमन इसका एक सौम्य उदाहरण है क्योंकि हम जानबूझकर अपने दिमाग को कहीं और लगाने की कोशिश करते हैं ताकि हम इसके द्वारा उत्पीड़ित न हो सकें।

प्रतिगमन : एक पुराने, साधारण रुप से अपरिपक्व व्यवहार को अपने भावनाओं द्वारा बाहर निकालना जो वयस्क अवस्था की तुलना में कम परिपक्व अवस्था में उपयुक्त हो सकता है। उदाहरणार्थ, नाराज होने पर चिल्लाना एवं सामान फेंकना, बीमार होने पर परिवार के द्वारा अत्यधिक ध्यान देने की इच्छा करना।

उदात्तीकरण : कष्टकारी भावनाओं एवं संवेगों को किसी रचनात्मक एवं संरचनात्मक कार्य में बदल देना। कैंसर से पीड़ित एक महिला किसी अन्य कैंसर रोगी के लिए कार्य शुरु कर देती है। कला एवं साहित्य के महान कार्य जीवन के इस प्रकार की दुःखद घटनाओं से निकल सकते हैं परन्तु बाद में यह स्वयं के लिए बल प्राप्त कर सकते हैं एवं किसी के जीवन को बदल सकते हैं।

यदि आप सावधानीपूर्वक निरीक्षण करते हैं तब आप पाएँगे कि उपर्युक्त उल्लिखित रक्षा युक्तियाँ उदात्तीकरण को छोड़ करके, ये सब एक तरह से कष्टकारी घटनाओं एवं परिस्थितियों से बचने एवं मिथ्या वर्णन के प्रयास हैं जो हमारे ऊपर इनके प्रभाव को कम करते हैं। व्यक्तित्व का विकास इस व्यक्तित्व सिद्धांत का अगला पहलू है जिसकी नीचे चर्चा की गई हैं।

(iii) **मनोलैंगिक अवस्था का विकास** : फ्रायड ने सामान्य रुप से जैविक विकास एवं विशेष रुप से लैंगिक विकास पर बहुत बल दिया है। बच्चे के विकास के अपने सिद्धांत में फ्रायड ने क्रमिक अवस्थाओं का वर्णन किया है जो शारीरिक क्षेत्र के चारों तरफ घूमता है। उनके अनुसार, जन्म से ही व्यक्ति में खुशी तलाश करने की प्रबल आदत होती है, विशेष रुप से शारीरिक उद्दीपन के द्वारा एवं मुख्य तौर से शरीर के उन अवयवों के उद्दीपन द्वारा जो स्पर्श के प्रति संवेदनशील हैं। फ्रायड ने शरीर के इन भागों को कामोत्तेजक क्षेत्र कहा है।

यदि एक बच्चे की आवश्यकता किसी एक मनोलैंगिक अवस्था पर या तो पूरी नही हुई या जरूरत से ज्यादा हुई तो स्थिरण हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि बच्चा लगातार पूर्व अवस्था की तरफ लगाव रखेगा जबकि वह एक नई अवस्था की तरफ जा रहा है। परिणामस्वरुप, स्थिरण अवस्था की समस्याएँ एवं व्यवहार का तरीका साथ रहेगा एवं प्रायः प्रौढ़ावस्था तक जाएगा। इन अवस्थाओं को नीचे दिया गया है–

1. *मौखिक अवस्था–(जन्म से लगभग एक वर्ष तक) :* इस अवस्था में नवजात शिशु मुख के द्वारा प्रसन्नता प्राप्त करता है। यदि एक बच्चे को परितोषण से मना किया जाता है या आवश्यकता से अधिक किया जाता है, (माँ दो वर्ष या दो से अधिक वर्ष तक खाना खिलाती हैं) इस पहलू में बच्चा मौखिक स्थिरण प्राप्त कर लेगा। प्रौढ़ावस्था में यह स्थिरण लालच, असुरक्षा, निर्भरता एवं निष्क्रियता जैसे व्यवहारों में परिणित होगा।
2. *गुदीय अवस्था (एक वर्ष से तीन वर्ष तक) :* इस अवस्था में, जब माता-पिता बच्चे को मूत्र त्याग एवं मल त्याग करने का प्रशिक्षण देते हैं, वह नियंत्रित होता है एवं बाह्य वास्तविकता का सामना करता है। अहम् प्रकट होना शुरु हो जाता है क्योंकि इसे इदम् को नियंत्रित करना है। इस अवस्था में स्थिरण झंझट, अनियमितता, स्वभाव में झल्लाहट, क्रूरता, विध्वंसकता एवं परपीड़न-कामुकता जैसे वयस्क के विशेषताओं में दिखाई देने वाले व्यवहारों में परिणित होते हैं। बच्चा विद्रोही, अत्यधिक अनुकूल, कंजूस, दुराचारी या जिद्दी भी हो सकता है एवं अतिश्योक्तिपूर्ण आत्म-नियंत्रण प्रदर्शित करता है।

3. *लैंगिक अवस्था (3 वर्ष से 5 वर्ष तक) :* इस अवस्था में बच्चे विपरीत लिंग के अभिभावक के प्रति प्रेममय एवं कामुक भावनाओं को विकसित करते हैं। लड़के अपने पिता के व्यवहार के तरीकों की पहचान करते हैं जिसमें उनकी अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं सही तथा गलत की भावना को समझना शामिल होता है। इसी प्रकार लड़कियाँ अपनी माता के व्यवहार के तरीकों को अपनाती हैं। इससे पराहम् का विकास होता है।
4. *कामप्रसुप्ति अवस्था (6 वर्ष से यौवनारंभ तक) :* फ्रायड ने व्यक्तित्व के विकास में इस अवस्था को बहुत महत्वपूर्ण नहीं माना है। इस अवस्था में जैसा कि बच्चे बाहरी दुनिया के बारे में अधिक सीखते हैं, लैंगिकता का व्यापक रुप से दमन किया जाता है एवं अहम् बढ़ता है। यह अवस्था बौद्धिक विकास के रुप में जानी जाती है जिसमें बच्चा बहुत सी रक्षा युक्तियाँ एवं अनेकों कौशलों को सीखता है।
5. *जननांगीय अवस्था (यौवनारंभ से किशोरावस्था एवं आगे) :* इस अवस्था में परिपक्व इतरलिंगी अभिरुचि शुरु होती प्रतीत होती है। इस अवस्था में सफलता पहले के अवस्थाओं की सफलता पर निर्भर होती है। यह अवस्था, वयस्क लैंगिकता के उत्तरदायित्वपूर्ण सुख के लिए मंच का निर्माण करती है जो कि फ्रायड के अनुसार स्वस्थ विकास का निष्कर्ष है।

प्रत्येक अवस्था–मौखिक, गुदीय, लैंगिक एवं जननांगीय सुख के क्षेत्रों पर केन्द्रित होती है। उपर्युक्त वर्णित प्रत्येक अवस्था में आवश्यकताओं का परितोषण व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास के लिए बहुत निर्णायक होता है। माता-पिता एवं बच्चे का संरचनात्मक संबंध स्वस्थ व्यक्तित्व की तरफ ले जाता है जबकि बाल्यावस्था के अस्वस्थ अनुभव तंत्रिका-रोग व्यक्त्वि की तरफ ले जाता है। विकास की प्रक्रिया में बहुत सी कठिनाइयों एवं परेशानियों का सामना करना पड़ता है जिससे व्यक्ति विकास की एक विशेष अवस्था में स्थिर हो सकता है एवं समस्यात्मक व्यवहार प्रदर्शित कर सकता है। कुछ बच्चे जो अपने प्रारम्भिक जीवन में गिरने या किसी अन्य आक्रमकता का सामना करने के आघात से परिचित होते हैं, वे बहुत शांत हो जाते हैं एवं आसानी से डर जाते हैं। उनके अर्न्तमन में निहित असुरक्षा की भावना उन्हें आश्रित व्यक्तित्व की तरफ ले जाती है। इस प्रकार व्यवहार के कारण का पता लगाना बहुत कठिन होता है।

अव्यस्थित व्यवहार/व्यक्तित्व का उपचार मनोगतिक उपागम पर आधारित होता है जिसे मनोविश्लेषण कहा जाता है। यह सेवार्थी को अपने पिछले समय में वापस जाकर, बाल्यावस्था के अनुभवों को याद करना एवं जो दिमाग में आता है उसके विषय में बात करना शामिल है। सेवार्थी को अचेतन यादों का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिससे उसके विषय में ज्ञान हो सके एवं उसे परामर्शदाता को बताए जिसे मनोवैश्लेषिक कहा

जाता है। मनोवैश्लेषिक रोर्शा मसिलक्ष्म परीक्षण जैसे अन्य परीक्षणों का प्रयोग करते हैं जिसमें परामर्शदाता की तरफ से विस्तृत व्याख्यात्मक कौशल की जरुरत होती है। जिन्हें इस उपागम के बारे में अधिक जानकारी की अभिरुचि है वे फ्रायड की पुस्तक का अध्ययन कर सकते हैं।

अगला मनोगतिक व्यक्तित्व सिद्धांत युंग का विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान है जिसकी चर्चा नीचे की गई है–

युंग का विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान

एक अन्य मनोवैश्लेषिक कार्ल गुस्ताव युंग ने व्यक्ति के भविष्य के लिए उद्देश्य, अपेक्षा एवं योजनाओं पर अधिक बल दिया है।

युंग के अनुसार अचेतन दो सतहों में निहित होता है–एक सामूहिक अचेतन है एवं दूसरा व्यक्तिगत अचेतन है। सामूहिक अचेतन व्यक्तित्व की आधारशिला है। यह आद्यप्ररुप का स्टोरगृह है। आद्यप्ररुप, आद्य प्रतिमाएँ, विचार या पूर्वप्रवृत्तियाँ है जो मानव जाति के लिए सामान्य हैं। कुछ सर्वाधिक सामान्य विचार/प्रतिमान हैं–

ईश्वर, पुनर्जन्म, शैतान या बुद्धिमान वृद्ध व्यक्ति। सबसे पहले युंग ने ही अन्तर्मुखी (अंतःनिदेशित) एवं बहिर्मुखी (बाह्य-निदेशित) व्यक्तित्व प्ररुपों का वर्णन किया है। प्रत्येक व्यक्ति में एक व्यक्तिगत अचेतन होता है जो चेतन अनुभवों से विकसित होता है जिसे दमन कर दिया जाता है या भुला दिया जाता है।

फ्रायड एवं युंग के अलावा जिस अगले मनोगतिक सिद्धांत से आप परिचित होंगे वह एडलर का है।

एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान

एक अन्य मनोवैश्लेषिक एडलर (1927) ने व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक प्रभाव पर बल दिया है। उनका विश्वास था कि हम सामाजिक प्राणी हैं जो कि सामाजिक आवेग से संचालित होते हैं केवल जैविकीय प्रवृत्ति के द्वारा नहीं। उनके अनुसार, व्यक्तित्व में मुख्य प्रेरक शक्ति विशिष्टता के लिए संघर्ष करने में होती है। सामंजस्य के लिए, अपने में सुधार हेतु एवं जीवन की चुनौतियों में निपुणता प्राप्त करने में यह संघर्ष सार्वभौम है।

एडलर का विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति को हीनता मनोग्रंथि की भावना पर विजय प्राप्त करने के लिए एक प्रक्रिया पर कार्य करना होता है जिसे प्रतिकरण कहते हैं। प्रतिकरण व्यक्ति की योग्यता को विकसित करके काल्पनिक या वास्तविक हीनताओं के ऊपर विजय प्राप्त करने के प्रयास से संबंधित है। उनका विश्वास था कि प्रतिकरण पूर्णरुप से सामान्य होता है। फिर भी, कुछ लोगों में हीनता की भावना अत्यधिक हो सकती है जो हीनता मनोग्रंथि के रुप में परिणित होती है। हीनता मनोग्रंथि वाला व्यक्ति कमजोरी एवं उपयुक्तता की भावना को बढ़ा-चढ़ाकर अनुभव करता है। एडलर ने विश्वास किया कि या तो माता-पिता के द्वारा प्यार-दुलार या माता-पिता के द्वारा उपेक्षा हीनता मनोग्रंथि को उत्पन्न कर सकती

है। एक व्यक्ति 'स्वार्थपूर्ण शैली' या एक सकारात्मक 'अदम्य जीवन शैली' को जीवन में विकास कर सकता है जो परिवार के अनुभवों पर आधारित होता है।

एडलर के अनुसार परिपक्व एवं सही प्रकार से समायोजित व्यक्तियों को एक बड़े समुदाय में भाग लेने की आवश्यकता के साथ ही साथ शक्ति, नियंत्रण, महारत एवं व्यक्तिगत विकास की आवश्यकता होती है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-2

1. निम्नलिखित में से प्रत्येक को कौन योगदान देता है?
   अ. मनोलैंगिक अवस्था का विकास
   ब. सामूहिक अचेतन
   स. विशिष्टता के लिए संघर्ष
2. फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धांत के तीन कारक क्या है?
3. फ्रायड के द्वारा वर्णित चेतना की तीनों अवस्थाएँ कौन सी हैं?
4. एडलर एवं युंग के व्यक्तित्व सिद्धांतों के मुख्य घटक क्या हैं?

यह अन्तिम मनोगतिक व्यक्तित्व सिद्धांत था।

आप अब तक विशेषक एवं प्ररुप व्यक्तित्व सिद्धांतों एवं व्यक्तित्व के मनोगतिक सिद्धांतों के विषय में सीख चुके हैं। आगे हम व्यावहारिक सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे।

2.3.3 परामर्श में व्यवहारवादी एवं संज्ञानात्मक उपागम

ये उपागम अधिगम प्रक्रियाओं के द्वारा जिस प्रकार आदतें बनती हैं उन तरीकों पर बल देते हैं। व्यक्तित्व के व्यवहारवादी एवं अधिगम सिद्धांत अधिगम के सिद्धांतों से प्रकट हुए हैं।

(i) *व्यवहारवादी सिद्धांत :* स्किनर (1938) ने प्रस्तावित किया कि व्यक्तित्व का विकास अधिगम के द्वारा होता है। उन्होंने विश्वास किया कि ज्यादातर मानव प्रतिक्रिया ''क्रियाप्रसूत अनुबंधन'' के परिणाम जैसे प्रबलन, दण्ड एवं विलोप से होती है जो लोगों के प्रतिक्रिया के तरीके को निर्धारित करती है। जब ये प्रतिक्रियाएँ अनुकूल परिणाम या पुरस्कार लाती हैं, ये ताकतवर हो जाती है। जब प्रतिक्रिया दण्ड की तरफ ले जाती है, ये कमजोर हो जाती है। जब एक शिक्षक एक बच्चे के किसी विशेष व्यवहार की प्रशंसा करता है तब वह व्यवहार बार-बार दोहराया जाएगा। उदाहरणार्थ, एक बच्चे की स्वच्छता के लिए प्रशंसा होती है तो वह स्वच्छ रहने पर ध्यान देगा, वहीं पर यदि एक बच्चे को दण्डित किया जाता है तो वह उस व्यवहार में कमजोर होता जाएगा जिसके लिए उसे दण्डित किया गया है। लेकिन यह जानना बहुत आवश्यक है कि अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग पुरस्कार या दण्ड होता है। मौखिक प्रशंसा एक बच्चे के लिए

पुरस्कार हो सकता है परन्तु दूसरे के लिए नही जो एक वास्तविक पुरस्कार की अपेक्षा करता है।

(ii) *बन्डुरा का सामाजिक अधिगम सिद्धांत :* अलबर्ट बन्डुरा (1965) का विश्वास था कि व्यक्तित्व व्यापक रुप से अधिगम के द्वारा निर्धारित होता है। उनका विचार है कि अनुबन्धन एक यांत्रिक क्रिया नही है जिसमें लोग निष्क्रिय रुप से भाग लेते हैं। इसके विपरीत, उन्होंने अपना मत स्पष्ट किया है कि लोग सक्रियता से अधिकतम अनुकूल परिणाम के लिए अपने पर्यावरण के बारे में सूचना को तलाशते एवं योजित करते हैं। बन्डुरा का मुख्य बिन्दु है कि अधिकतर प्रतिक्रिया की आदतें अनुसरण की वजह से उत्पन्न होती हैं। बच्चे एवं वयस्क दोनों में उन व्यक्तियों का अनुसरण करने की आदत होती है जिनको वे पसन्द या सम्मान करते हैं, उन व्यक्तियों की तुलना में बहुत अधिक जिनको वे नापसन्द या सम्मान नहीं करते हैं। लोगों में उन व्यक्तियों के व्यवहार को अनुसरण करने की आदत होती है जिन्हें वे बहुत आकर्षक एवं प्रभावशाली समझते हैं जैसे फिल्मों के नायक या खिलाड़ी।

अनुकरण की उस समय अधिक संभावना रहती है जब वे अपने एवं इन मॉडल्स के बीच साम्य देखते हैं। इस प्रकार बच्चों में अपने समान लिंग वाले मॉडल्स का अनुसरण करने की प्रवृत्ति अधिक होती है एवं तुलनात्मक रुप से विपरीत - लिंग के मॉडल्स में कम होती है। अन्त में, लोगों में एक मॉडल का नकल करने की अधिक संभावना होती है यदि वे प्रेक्षण करते हैं कि मॉडल का व्यवहार सकारात्मक परिणाम की तरफ जाता है।

सामाजिक अधिगम सिद्धांत के अनुसार, व्यक्तित्व के विकास में मॉडल्स का बहुत प्रभाव होता है। बच्चे हठधर्मी, कर्त्तव्यनिष्ठ, आत्म-निर्भर, विश्वसनीय, सरलता एवं इस तरह के अन्य गुणों को इन तरीकों से अन्य लोगों के व्यवहार के प्रेक्षण के द्वारा सीखते हैं। माता-पिता, शिक्षक, रिश्तेदार, भाई-बहन एवं दोस्त छोटे बच्चों के लिए आदर्श के रुप में होते हैं। बन्डुरा एवं उनके सहयोगियों ने व्यापक अनुसंधान किया है यह दिखाते हुए कि किस प्रकार मॉडल्स बच्चों में आक्रमकता, लैंगिक परिचय एवं नैतिक मापदण्डों के विकास में प्रभाव डालते है। व्यक्तित्व के इन अधिगम सिद्धांतों का ज्ञान परामर्शदाता को अधिगम की योग्यता के स्त्रोत एवं प्रतिफल की पहचान करने में सहायता करता है जो तात्कालिक व्यवहार को निर्धारित करते हैं। बहुत सी परामर्श तकनीकें जिन्हें व्यवहार परिष्करण कहते हैं, वे इन उपागमों पर आधारित हैं। आप मॉड्यूल में इनके विषय में पढ़ेंगे। सेवार्थी की सहायता के क्रम में परामर्शदाता अपने द्वारा सीखे गए अधिगम व्यवहार की खोज करता है एवं उसके व्यवहार पर प्रभाव डालने वाले स्त्रोत का पता लगाता है

जैसे प्रिय मॉड्ल, माता-पिता या अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति जिनका वह अनुसरण करता/करती है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-3

1. व्यवहारवादी सिद्धांतों में निहित सामान्य एवं असामान्य व्यवहार हैं–

अ. पांडित्य-पूर्ण / सीखा हुआ

ब. वंशानुगत

स. गहन द्वन्द

द. उपर्युक्त में से कोई भी नही

2. किस प्रकार से सीखी हुई प्रतिक्रियाएँ मजबूत या कमजोर हो जाती हैं? उदाहरण का प्रयोग करते हुए व्याख्या कीजिए।

आपने अभी व्यवहारवादी उपागम पढ़ा है। अब आपको व्यक्तित्व के ज्ञान के लिए मानवतावादी उपागम से परिचित कराया जाएगा।

2.4 मानवतावादी उपागम

ये सिद्धांत वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं ''आत्म'' के विकास पर बल देते हैं एवं किस प्रकार से व्यक्ति स्वयं एवं दुनिया को देखता है।

यह उपागम व्यक्ति के अनुभवों को प्रमाणिक एवं वास्तविक रुप में स्वीकार करता है। व्यवहार जिस तरह से व्यक्ति दुनिया को देखता एवं अनुभव करता है उस ढंग से निर्धारित होता है न कि केवल वस्तुनिष्ठ वास्तविकता के द्वारा। मानवतावादी सैद्धान्तिकों में से एक कार्ल रोजर्स (1961) हैं। हम उनके सिद्धांत की विस्तृत चर्चा करेंगे।

रोजर्स का उपागम

यह उपागम इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य को निर्धारित करने में प्रमुख परिचय निभाते हैं। रोजर्स का विश्वास था कि सभी प्राणी मूलभूत रुप में अच्छे हैं लेकिन उनका व्यक्तित्व पर्यावरण के तनावों एवं अपेक्षाओं से विकृत हो जाता है। इनके सिद्धांत के मुख्य संघटक आत्म और विसंगति हैं।

(i) आत्म : आत्म या आत्म-संप्रत्यय आपकी अपनी मानसिक तस्वीर या प्रतिरुप है जो अन्य लोगों या पदार्थों से भिन्न है। आत्म-प्रतिरुप हमारी योग्यता एवं सीमितिता को समाविष्ट करती है, हम कैसा महसूस करते हैं और हमारे दृष्टिकोण के विषय में –

1. हम वास्तव में किसके समान हैं (आत्म-प्रतिरुप)
2. एक व्यक्ति के रुप में (आत्म-मूल्यांकन) आत्म-महत्व के विषय में हमारा ज्ञान एवं
3. विकास एवं उपलब्धि के लिए हमारी अभिलाषा (आत्म-आदर्श)

(ii) *विसंगति :* विसंगति किसी के आत्म-संप्रत्यय एवं वास्तविक अनुभव के एक स्तर की असमानता है। तुलना में, यदि एक व्यक्ति का आत्म-सम्प्रत्यय सामान्य रुप से ठीक है तो यह वास्तविकता के साथ विसंगति का होना कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष मात्रा में विसंगति का अनुभव करते हैं। फिर भी अत्यधिक विसंगति का परिणाम कठोरता, रक्षात्मकता, कुसन्तुलन एवं मनोवैज्ञानिक सुख में कमी होता है।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का एक वास्तविक आत्म (सत्य-आत्म) एवं एक आदर्श आत्म (जो एक व्यक्ति होना चाहता है) होता है। दोनों आत्म के ठीक से न मिलने या विसंगति, परेशानी उत्पन्न करती है। इस प्रकार के लोग, जिद्दी, रक्षात्मक एवं कुसन्तुलित होते हैं। परिपक्व एवं व्यवस्थित लोगों में सम्पूर्ण व्यक्ति एवं आत्म के बीच विसंगति होती है। आप ने अपनी कक्षा में अनुभव किया होगा कि कुछ बच्चों में अपनी योग्यता एवं अन्य विशेषताओं के बारे में गलत अनुमान होता है। ये बच्चे बहुत अधिक निराश हो जाते हैं जब ये वास्तविकता का सामना करते हैं। ये असफलता के अनुभव को नही देखना चाहते हैं या अन्य लोगों पर दोषारोपण करते हैं।

किस प्रकार से आत्म में कुसन्तुलन या विसंगति को दूर किया जा सकता है, उसके विषय में नीचे चर्चा की गई है।

आत्म का विकास

रोजर्स का विश्वास था कि बाल्यावस्था के अनुभव आत्म-सम्प्रत्यय एवं आत्म-अनुभव के बीच समानता या विसंगति को आगे बढ़ाते हैं। लोगों में दूसरों से स्नेह, प्रेम, स्वीकृति एवं सहमति पाने की प्रबल आवश्यकता होती है। जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में माता-पिता यह स्नेह उपलब्ध करते हैं। कुछ माता-पिता अपने स्नेह को बहुत शर्तों के साथ जोड़ देते हैं। वह बच्चे के अच्छी तरह से व्यवहार करने एवं उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने से संबंधित होता है। जब माता-पिता का प्यार शर्त प्रतीत होता है तब बच्चे प्रायः उन अनुभवों के आत्म-सम्प्रत्यय को बंद कर देते हैं जो उन्हें प्रेम के अयोग्य महसूस कराता है। दूसरी तरफ, कुछ माता-पिता का प्यार अशर्त होता है। उनके बच्चों को बेकार अनुभवों को रोकने की कम आवश्यकता होती है क्योंकि उन्हें विश्वास दिलाया गया है कि वे प्रेम के योग्य हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे क्या करते हैं।

(i) *चिंता एवं बचाव :* रोजर्स के विचार में वह अनुभव जो व्यक्ति को अपने विषय में विचार को धमकी देता है, वह कष्टकर चिंता का मुख्य कारण है। इस चिंता से बचने के लिए व्यक्ति प्रायः अपने अनुभव की पुर्नव्याख्या के प्रयास में रक्षात्मक व्यवहार करता है ताकि यह उनके आत्म-सम्प्रत्यय के साथ अनवरत

प्रतीत हो। इस प्रकार वे अपने आत्म-सम्प्रत्यय को सुरक्षित रखने के लिए वास्तविकता पर ध्यान नही देते है, इनकार करते हैं एवं उसको घुमाते हैं।

(ii) *पूर्णतया कार्यरत् व्यक्ति :* हमें अपनी भावनाओं एवं कार्यों को पहचानना एवं स्वीकार करना चाहिए न कि उन्हें मना करना चाहिए। रोजर्स के अनुसार, सभी लोग एक आत्मनिष्ठ दुनिया में रहते हैं जो कि किसी पूर्ण रुप में केवल उनके द्वारा ही जानी जा सकती है। एक व्यक्ति का आत्म-सम्प्रत्यय जितना अधिक जिद्दी एवं सख्त होगा उतना ही कम उसके व्यवहार में खुलापन होगा/होगी। इसकी तुलना में, अपेक्षाकृत अच्छी तरह से व्यवस्थित व्यक्ति इस रुप में आगे बढ़ना चाहते हैं जिसे रोजर्स ''पूर्णतया कार्यरत् व्यक्ति'' कहते हैं।

आपने व्यक्तित्व के मानवतावादी सिद्धांत जो कि कार्ल रोजर्स द्वारा प्रतिपादित है, उसे अभी पढ़ा है। व्यक्तित्व के इस सिद्धांत ने परामर्श में रोजरियन उपागम की स्थापना की है जो इस धारणा पर आधारित है कि अशर्त सकारात्मक देखभाल एवं प्रेम जिसे ''अशर्त सकारात्मक आदर'' कहा जाता है बच्चे को अपने आपको स्वीकार करने, कमजोरी एवं ताकत को स्वीकार करने में सहायता करता है साथ ही साथ अपने आत्म एवं वास्तविकता के बीच समरुपता को वापस लाता है। जब आत्म वास्तविकता के अनुभवों पर आधारित होता है तब व्यक्ति पूर्णतया कार्यरत् हो जाता है एवं अन्य के साथ सारगर्भितपूर्ण संबंध रखता है। आप इस सिद्धांत के विषय में माड्यूल-2, यूनिट-5 ''व्यक्ति केन्द्रित एवं गेस्टाल्ट उपागम'' में पढ़ेंगे। एक अन्य सिद्धांत जो आत्म के सम्प्रत्यय का प्रयोग करता है वह मैस्लो का है जिसे नीचे प्रस्तुत किया गया है।

मैस्लो का आत्म-सिद्धि सिद्धांत–

इस संदर्भ में मैस्लो (1970) का आत्म-सिद्धियों पर कार्य बहुत मूल्यवान है। मैस्लो का आत्मसिद्धि की अवधारणा मानसिक स्वास्थ्य के बहुत नजदीक से संबंधित है। आत्म-सिद्धि का तात्पर्य हममें से प्रत्येक की अंतर्निहित क्षमता एवं योग्यता को पूर्णरुप से विकसित करना होता है। मैस्लो ने उन व्यक्तियों के जीवन के विषय में अध्ययन किया जिन्होंने अपनी अंतर्निहित योग्यता एवं क्षमता के उपयोग से प्रभावशाली जीवन जिया था। उदाहरणार्थ, अलबर्ट आइन्सटीन, विलियम जेम्स, एलीनर रुसवेल्ट एवं अब्राहम लिंकन। उन्होंने कलाकारों, लेखकों, कवियों एवं अन्य रचनात्मक व्यक्तियों का भी अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि न केवल उच्च सम्मानीय व्यक्तियों बल्कि साधारण व्यक्तियों जैसे गृहिणी, बढ़ई, लिपिक या विद्यार्थी भी रचनात्मक रुप से रह सकते हैं एवं अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग कर सकते हैं। उनका मुख्य योगदान अनवरत् व्यक्तित्व विकास की संभावना की तरफ ध्यान आकृष्ट करना था। उन्होंने आत्म-सिद्धि को गतिशील प्रक्रिया समझा न कि केवल एक बार प्राप्त की जा सकने वाली साधारण पूर्णविराम। अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने निम्नलिखित विशेषताएँ प्राप्त किया जो आत्म-सिद्धि में दिखाई देती हैं–

1. **वास्तविकता के प्रति व्यापक दृष्टिकोण–** उनमें परिस्थितियों को सही एवं ईमानदारी से समझने की योग्यता थी।
2. **आत्म एवं अन्य को सहजता से स्वीकार करना–** वे अपने स्वयं के मानवीय स्वभाव को इसकी कमियों के साथ स्वीकारने में सक्षम थे। अन्य लोगों की कमियों एवं मानव दशा के अन्तर्विरोधों को भी मनोविनोद एवं सहनशीलता के साथ स्वीकार करते थे।
3. **स्वतः प्रवृत्ति–**अपनी रचनात्मकता को दैनिक क्रियाकलापों में शामिल किया। असाधारण रुप से जिन्दादिल, कार्य में संलग्न एवं स्वतः प्रवृत्त उनकी आदत थी।
4. **कार्य-केन्द्रिकरण–**उनका एक उद्देश्य था जो जीवन में पूरा करना था या कुछ कार्य या अपने से बाहर की समस्या की खोज में लगे रहना था।
5. **स्वतंत्रता–** अन्य लोगों या बाह्य प्रभुत्व के ऊपर निर्भर रहने से स्वतंत्र थे। वे उपाय कुशल एवं स्वतंत्र थे।
6. **प्रशंसा की अनवरत् स्फूर्ति–**आत्म-सिद्धि जीवन के मूलभूत सामानों की लगातार नए तरीके से प्रशंसा करते प्रतीत होते हैं। सूर्यास्त की सुन्दरता या एक फूल की उसी स्फूर्ति एवं उल्लास के साथ महसूस की जा सकती है यद्यपि ये सब सामान्य अनुभव हो सकते हैं। उनमें एक कलाकार या बच्चे की तरह किसी वस्तु को देखने की पवित्रता होती है।
7. **मानवता के साथ मैत्रीभाव–** सामान्य रुप से अन्य लोगों एवं परिस्थितियों के साथ गहन तादात्म्य महसूस करते थे।
8. **गहन, आत्मीय रिश्तों के प्रतीक** गूढ़ अंतर्वैयक्तिक सम्बंध स्थापित करना।
9. **मनोविनोद के अनुकूल भावना–** यह किसी को इंगित करके हँसने की क्षमता जैसे हँसी-मजाक के लिए हो।
10. **चरम सीमा का अनुभव–** चरम सीमा के अनुभवों को बार-बार दोहराना। ये उल्लास, सद्भाव की भावनाओं के गहन अर्थ एवं ब्रह्मांड के साथ एकत्व की भावना के प्रतीक के रुप में थे। संक्षिप्त में, आत्म-सिद्ध सुरक्षित, चिंतामुक्त, स्वीकृतप्रिय, दूसरों के द्वारा स्नेहित एवं जिन्दादिल की भावना महसूस करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बेहतर मानसिक स्वास्थ्य की तरह हमारी प्रवृत्ति हमें बेहतर से बेहतर मानव आदर्श की तरफ ले जाती है। यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि स्थितप्रज्ञ की भारतीय अवधारणा भगवतगीता में उदाहरण सहित स्पष्ट की गई है। भगवतगीता जीवन के विज्ञान पर गूढ़ ज्ञान एवं हिन्दू धर्म का सबसे प्रतिष्ठित धर्म ग्रंथ है। स्थितप्रज्ञ की अवस्था मानव सम्पूर्णता की पराकाष्ठा को स्पष्ट करती है। यह मोक्ष अथवा आत्म-ज्ञान के रुप में जानी जाती है जो कि अहम् की पूर्णतया समाप्ति

एवं समस्त प्राणियों के साथ एकात्मकता को सूचित करती है। मानसिक स्वास्थ्य, आत्म-ज्ञान की तरफ बढ़ने वाली यात्रा की पूर्व आवश्कयताएँ हैं जिसे बहुत कम ऋषि एवं मुनि प्राप्त करने में सफल हुए हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं महर्षि रमन इसके दो दैदीप्यमान उदाहरण हैं जो बीसवीं शताब्दी में थे। इस सम्बंध में गहराई तक जाना इस अध्याय की सीमा से बाहर है। फिर भी, मानसिक स्वास्थ्य पर कोई भी चर्चा मोक्ष अथवा अनासक्ति की अवस्था के प्रसंग के बिना अधूरी है जिसे भारतीय दार्शनिक प्रथाओं में सभी व्यक्तियों के द्वारा हासिल करने के लिए अंतिम एवं निर्णायक माना गया है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-4

1. मानवतावादी सिद्धांत बल देते हैं–

अ. कुंठा ब. वैयक्तिक स्वतंत्रता

स. अधिगम द. अचेतन कारकों

अब तक आप विशेषक एवं प्ररुप, मनोगतिक, व्यवहारवादी एवं मानवतावादी उपागमों को व्यक्तित्व के अध्ययन के प्रसंग में पढ़ चुके हैं। अब आप आगे भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतियों में आत्म की तुलना के विषय में पढ़ेंगे।

2.5 आत्म एवं चेतना की अवधारणा–

प्रत्येक संस्कृति की अपने मूल्य एवं जीने का एक सर्वमान्य तरीका होता है जो इससे सम्बंधित व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं, संवेगों, कार्यों एवं प्रयासों को प्रभावित करता है।

उदाहरणार्थ, अमेरिकन संस्कृति अहं-केन्द्रित एवं वास्तविक प्रवृत्तियों पर अधिक बल देती है जबकि भारतीय संस्कृति इन मूल्यों–सहानुभूतिक अभिवृत्ति, आत्म-त्याग, सहयोग, आत्म-अनुशासन एवं आत्म-आदर्शों पर अधिक बल देती है। पाश्चात्यदेशीय अधिकतर आमोद-प्रमोद एवं कार्य में उन्नति को अधिक वरीयता देते है और सामान्य रुप से आन्तरिक जीवन एवं ध्यान को पसन्द नही करते हैं। भारतीयों का दृष्टिकोण आन्तरिक जीवन, आत्म का विकास एवं प्रथाओं के संरक्षण की तरफ अभिमुख होता है जबकि पाश्चात्य देशों का अपने संकल्पित एवं प्रभावशाली कार्यों के द्वारा पर्यावरण के बारे में महारत हासिल करना एवं मानव दशा में सुधार करना होता है।

फिर भी, भारतीय दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक इन विशेषकों के अलावा भी कुछ जीवन शक्तियों को ग्रहण करते हैं जो व्यक्तियों को सोचने, महसूस करने, इच्छा करने एवं कार्य करने के योग्य बनाती है। यह जीवन-शक्ति एक स्थिर कारक है जो जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं पर्यावरणीय परिवर्तनों के बीच में दृढ़ता से है। उन्होंने इसे ''आत्म-चेतना'' या ''आत्म-प्रदीप्त'' कहा है।

अब आप व्यक्तित्व को समझने के बहुत सारे अलग-अलग तरीकों को सीख चुके हैं। आप पढ़ेंगे कि किस प्रकार से यह ज्ञान समायोजन एवं विकास के सरलीकरण में लाभदायक होता है।

2.5.1 विकास एवं समायोजन हेतु अर्थापत्ति

समायोजन एक सतत् प्रक्रिया है एवं व्यवहार के बहुत से पहलुओं को शामिल करता है। फिर भी, निरपेक्ष रुप से समायोजन कहीं नही है। एक व्यक्ति जो परिस्थितियों के आधार पर कभी बदलता है एवं कभी उसके अनुकूल बनता है उसे अच्छी तरह से सामंजस्य स्थापित करने वाला समझा जाता है जबकि ठीक प्रकार से सामंजस्य स्थापित न कर पाने वाले व्यक्ति चिंता, आक्रामकता एवं विकृत चिंतन का लक्षण दिखाते हैं। इस प्रकार का व्यक्ति कम अनुकूली होता है क्योंकि वह परिस्थितियों पर ध्यान दिए बिना एक ही प्रकार की अनुक्रिया करता है एवं प्रायः अनुपयुक्त व्यवहार करता है।

मानवतावादी सिद्धांतों के पास समायोजन के लिए महत्त्वपूर्ण अर्थापत्ति है क्योंकि ये सिद्धांत व्यक्तित्व के विकास में आत्म की परिचय पर बल देते हैं। आत्म-सम्प्रत्यय एवं आत्म-जागरुकता के सिद्धांत एवं विकास सूचित करते हैं कि आत्म प्राणियों की मौलिक विशेषता है। ठीक प्रकार से व्यवस्थित आत्म व्यक्ति के व्यक्तित्व संरचना को निर्धारित करता है।

व्यक्ति अपने जीवन में समायोजित होगा या असमायोजित होगा, यह व्यापक रुप में उसके आत्म के विकास पर निर्भर होता हैं।

हमारे वैयक्तिकता का सारभाग, हमारे व्यक्तित्व का मूल तत्व हमारे अपने ''आत्म'' के दृष्टिकोण एवं अन्य के विषय में हमारे दृष्टिकोण में निहित हैं। ये दृष्टिकोण हमारे अतीत के अनुभवों पर आधारित हैं एवं दूसरों के प्रति हमारे व्यवहार को निर्धारित करते हैं। इस प्रकार यह दूसरों के साथ अन्योन्यक्रिया की अंतिम उपज है। अब हमें चर्चा करना चाहिए कि किस प्रकार ''आत्म-सम्प्रत्यय'' एवं आत्म-सम्मान'' एक व्यक्ति के समायोजन को प्रभावित करते हैं।

आत्म-सम्प्रत्यय एक व्यक्ति का अपने व्यक्तिगत विशेषकों का दृष्टिकोण है। एक व्यक्ति के आत्म-सम्प्रत्यय में उसके सभी विचार, दृष्टिकोण एवं भावनाएँ निहित होती है कि वह व्यक्ति कौन है। आत्म-सम्प्रत्यय का व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव होता है। एक बार एक स्थायी आत्म-सम्प्रत्यय अस्तित्व में आ जाता है, यह हमारे आत्मनिष्ठ संसार को स्वरुप प्रदान करने लगता है इस निदेशन के द्वारा कि हम क्या ध्यान देते हैं, याद करते हैं एवं सोचते हैं। आत्म-सम्प्रत्य गहन रुप से व्यक्तिगत समायोजन को प्रभावित कर सकता है, विशेषरुप से जब वे अस्पष्ट एवं अनुचित होते हैं। यदि एक बच्चा कॉलेज में अच्छे ग्रेड पाने के बावजूद भी सोचता है कि वह मूर्ख,

अयोग्य एवं असफल है, तब उसके पास नकारात्मक संप्रत्यय है। शायद, वह चिन्तित एवं निराश रहेगा एवं इससे कोई फर्क नही पड़ता कि उसका प्रदर्शन कैसा है।

आत्म-सम्मान का तात्पर्य है कि व्यक्ति अपना किस प्रकार से मूल्यांकन करता है। नकारात्मक आत्म-सम्प्रत्यय से पीड़ित व्यक्ति का आत्म-सम्मान निम्न होता है। एक व्यक्ति जिसके पास उच्च आत्म-सम्मान है, वह विश्वस्त, स्वाभिमानी एवं आत्म-सम्मानित होता है। वह व्यक्ति जो आत्म-आलोचक, असुरक्षित एवं आत्मविश्वास में कमी प्रदर्शित करता है, उसमें निम्न आत्म-सम्मान है तथा वह प्रायः चिन्तित एवं अप्रसन्न रहता है। जिन व्यक्तियों में निम्न आत्म-सम्मान होता है वे अपने आत्म के विषय में गलत ज्ञान से पीड़ित रहते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों का आत्म-सम्प्रत्यय अस्थिर, अस्पष्ट एवं विक्षिप्त होता है। जब हम सफलता प्राप्त करते हैं तब हमारा आत्म-सम्मान बढ़ता है। यह दूसरों के द्वारा प्रशंसा से भी बढ़ता है। इस प्रकार एक व्यक्ति जो समर्थ एवं प्रभावी है तथा अन्य लोगों के द्वारा प्रिय, प्रशंसित एवं सम्मानित है, उसका आत्म-सम्मान प्रायः हमेशा उच्च रहेगा। उच्च आत्म-सम्मान का कारण विभिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग हो सकता है। उदाहरणार्थ, परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर कुछ संस्कृति में उच्च आत्म-सम्मान उत्पन्न कर सकता है जबकि कुछ में व्यक्तिगत उपलब्धि अधिक निर्णायक समझी जा सकती है। परम्परागत भारतीय समाज में औरतें जो अधिक शांत एवं विनम्र होती है, सामाजिक सहमति प्राप्त करती हैं जबकि निर्गामी एवं साहसी औरतों का ज्यादा पक्ष नही लिया जाता है इसलिए पूर्व प्रकार की औरतों में उच्च आत्म-सम्मान होने की ज्यादा संभावना होती है।

2.6 सारांश

हम व्यक्तित्व की प्रकृति एवं विशेषताओं की चर्चा कर चुके हैं। हम व्यक्तित्व के अनेक उपागमों की भी चर्चा कर चुके हैं। तीन मुख्य दृष्टिकोण हैं– जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक।

प्ररुप एवं विशेषक उपागम व्यक्तित्व उपागमों को व्यक्तित्व के प्ररुप अथवा स्थिर आयामों की पहचान करने में क्षेणीबद्ध करते हैं। मनोगतिक उपागम में, हमने व्यक्तित्व को गहराई से समझने के लिए सिद्धांतों का वर्णन किया है। अधिगम पर आधारित व्यवहारवादी सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। मानवतावादी सिद्धांत आत्म एवं अन्य लोगों के साथ अन्योन्यक्रिया से संबंन्धित है।

अंत में, हमने आत्म के सम्प्रत्यय एवं चेतना को भारतीय एवं पाश्चात्य संदर्भ के आधार पर वर्णन किया है एवं समायोजन तथा विकास हेतु इसके अर्थापत्ति का भी वर्णन किया है।

व्यक्तित्व के ये सिद्धांत शिक्षकों एवं परामर्शदाताओं को अपने छात्रों/सेवार्थियों को बेहतर तरीके से समझने में सहायक हैं।

आत्म-मूल्यांकन अभ्यास

1. आप इनसे क्या समझते हैं–
   (i) व्यक्तित्व प्ररुप?
   (ii) व्यक्तित्व विशेषक?
2. फ्रायड के द्वारा दी गई व्यक्तित्व-विकास की पाँच अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
3. कम से कम छः अलग-अलग प्रकार की रक्षा-युक्तियों के विषय में बताइए जिसे आपने प्रयोग किया है या आपने अन्य लोगों को प्रयोग करते हुए देखा है।
4. रोजर्स के सिद्धांत के मुख्य संघटकों की संक्षिप्त में चर्चा कीजिए।
5. आत्म के पाश्चात्य एवं भारतीय सम्प्रत्यय का उल्लेख कीजिए।

आत्म-मूल्यांकन अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

1. (i) हैंस आइजेन्क ने ''प्ररुप'' पारिभाषिक शब्द का प्रयोग सह-संबंधित प्ररुपों या व्यक्तित्व आयामों, विशेषरुप से अंतर्मुखता-बहिर्मुखता (इ) तंत्रिकावाद-स्थायित्व (एन) एवं मनोवैश्लेषिकता (पी) के निर्धारण में प्रयोग किया है। एक व्यक्तित्व प्ररुप एक विस्तृत श्रेणी है लेकिन व्यक्तिगत विशेषकों का एक संयोजन प्रदर्शित करते हैं।

   (ii) विशेषक उपागम का तात्पर्य है कि लोग एक दूसरे से भिन्न होते हैं फिर भी वे एक व्यापक अलग-अलग प्रकार की परिस्थितियों के साथ सामंजस्यपूर्ण व्यवहार करते हैं। कृपया ध्यान दीजिए कि विशेषक सिद्धांत निर्धारित करते हैं कि किस प्रकार से लोग विशेषरुप से विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करने हेतु अपने पूर्वानुकूलता में भिन्न होते हैं। ये सिद्धांत मुख्य रुप से व्यक्ति की विशेषताओं जैसे स्पष्टवादिता, शर्मीलापन, दयालुता, विश्वसनीयता एवं इसी प्रकार के अन्य विशेषताओं पर बल देते हैं। विशेषकों के कुछ उदाहरण प्रमुख विशेषक, केन्द्रीय विशेषक एवं द्वितीय विशेषक हैं।

2. फ्रायड द्वारा दिए गए व्यक्त्वि के विकास की अवस्थाएँ हैं–

   मौखिक अवस्था (जन्म से लगभग एक वर्ष तक) : इस अवस्था में शिशु मुख के द्वारा प्रसन्नता प्राप्त करता है। यदि एक बच्चे को परितोषण से मना किया जाता है या आवश्यकता से अधिक दिया जाता है तो बच्चा मौखिक स्थिरण प्राप्त कर लेगा।

   गुदीय अवस्था (एक वर्ष से तीन वर्ष तक) : इस अवस्था में जब माता-पिता बच्चे को मूत्र एवं मल त्याग करने का प्रशिक्षण देते हैं, वह नियंत्रित होता है एवं बाह्य वास्तविकता का सामना करता है।

   लैंगिक अवस्था (तीन वर्ष वर्ष से पाँच वर्ष तक) : इस अवस्था में बच्चे विपरीत लिंग के अभिभावक के प्रति प्रेममय एवं कामुक भावनाओं को विकसित करते है।

कामप्रसुप्ति अवस्था (छः वर्ष से यौनारम्भ तक) : इस अवस्था में जैसे कि बच्चा बाहरी दुनिया के बारे में अधिक सीखता है, लैंगिकता का व्यापक रुप से दमन किया जाता है एवं अहम् बढ़ता है।

जननांगीय अवस्था (यौवनारम्भ से किशोरावस्था एवं आगे) : इस अवस्था में परिपक्व इतरलिंगी अभिरुचि शुरु होती प्रतीत होती है।

3. रक्षा-युक्तियों के कुछ उदाहरण हैं–

विस्थापन– एक व्यक्ति अपनी भावनाओं को मूल स्त्रोत से दूसरे लक्ष्य की तरफ अनुप्रेषित करता है।

युक्तिकरण– अपने एवं अपने कार्यों को उचित ठहराने के लिए अनेकों प्रकार के तर्क प्रस्तुत करना। इसका तात्पर्य है किसी महत्वहीन कार्य के लिए तर्कपूर्ण व्याख्या करना जो आपके साथ हुआ है और आप स्वयं को दोषारोपण एवं अपराध से मुक्त करना चाहते हैं।

प्रक्षेपण– अस्वीकृतयोग्य संवेगों या भावनाओं को दूसरों पर आरोपित करना।

प्रतिक्रिया निर्माण–भावनाओं को इसके विपरीत दिशा में मोड़ना। परेशान करने वाली भावनाओं एवं विचारों को विपरीत रुप में अभिव्यक्त करना।

अस्वीकरण– संतर्जक (अशुभ) विचारों एवं परिस्थितियों को स्वीकार करने से इन्कार करना।

दमन– संतर्जक (अशुभ) विचारों को अपने जानकारी से हटाना एवं इसकी यादों को निकालना।

प्रतिगमन– एक पुराने, साधारण रुप से अपरिपक्व व्यवहार को अपने भावनाओं के द्वारा बाहर निकालना जो कि प्रौढ़ावस्था की तुलना में कम परिपक्व अवस्था में उपयुक्त हो सकता है।

उदत्तीकरण– कष्टकारी भावनाओं एवं संवेगों को किसी रचनात्मक एवं संरचात्मक में बदल देना।

4. सिद्धांत के मुख्य संघटक आत्म एवं विसंगति हैं जिनकी नीचे चर्चा की गई है।

आत्म– आत्म या आत्म सम्प्रत्यय आपका अपना मानसिक चित्र या आपका प्रतिरुप है जो दूसरे व्यक्तियों या वस्तुओं से भिन्न है।

विसंगति–विसंगति किसी के आत्म-सम्प्रत्यय एवं वास्तविक अनुभव के बीच असमानता की अवस्था है। तुलनात्मक रुप से यदि एक का आत्म-सम्प्रत्त्य तर्कसंगत रुप से सही है तो इसे वास्तविकता के साथ विसंगति कहा जाएगा।

5. पाश्चात्य संस्कृति आत्मकेन्द्रीकरण एवं अधिक वास्तविक प्रवृत्तियों पर बल देती है। पाश्चात्यदेशीय आमोद-प्रमोद एवं कार्यों में उन्नति के तरीकों को वरीयता देते है एवं

सामान्य रुप से आन्तरिक जीवन एवं ध्यान को नापसंद करते हैं। पाश्चात्य देशीय पर्यावरण पर महारत हासिल करने एवं संकल्पित तथा प्रभावशाली कार्यों के द्वारा मानव दशा में सुधार करने की तरफ अभिमुख होते हैं। भारतीय संस्कृति मूल्यों जैसे सहानुभूतिपूर्ण अभिवृत्ति, आत्म-त्याग, सहयोग, आत्म-अनुशासन एवं आत्म आदर्शों पर बल देती है। भारतीय दृष्टिकोण आन्तरिक जीवन, आत्म का विकास एवं प्रथाओं के संरक्षण की तरफ अभिमुख होता है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-1

1. व्यक्तित्व की पाँच विशेषताएँ हैं–

   अ. व्यक्तित्व एक व्यक्ति की विशेषता का वर्णन करता है।

   ब. व्यक्तित्व अलग विशेषताओं का एक संयोजन नही है बल्कि इन विशेषताओं का प्रतिरुप है।

   स. ये विशेषताएं स्थिर एवं समय के साथ निहित रहती हैं।

   द. व्यक्तित्व आनुवंशिक संरचना, परिपक्वन एवं पर्यावरण का परिणाम है।

   क. व्यक्तित्व छोटे-छोटे अदृश्य तरीकों से परिवर्तित होता रहता है परन्तु परिवर्तन काफी समय बाद दिखाई देता है।

2. व्यक्तित्व के पंच-कारक निम्नलिखित हैं–

   अ. बहिर्मुखता

   ब. सहमतिशीलता

   स. अंतर्विवेकशीलता

   द. तंत्रिकाताप

   क. अनुभवों के लिए खुलापन

आत्म-निरक्षिण अभ्यास-2

1. अ. फ्रायड ब. युंग स. एडलर
2. फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धांत के तीन तत्व हैं–

   अ. इदम् ब. अहम् स. पराहम्
3. चेतना की तीन अवस्थाएँ हैं–

   अ. चेतन ब. अवचेतन स. अचेतन
4. युंग–सामूहिक अचेतन एवं व्यक्तिगत अचेतन, आद्याप्ररुप, अन्तर्मुखी (अंतःनिदेशित) एवं बहिर्मुखी (बाह्य निदेशित)।

   एडलर– जीवन शैली, हीनता बनाम उच्चता, शक्ति, नियंत्रण, निपुणता एंव व्यक्तिगत उन्नति की आवश्यकता तथा एक व्यापक समुदाय में भाग लेने की आवश्यकता।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-3

1. अ. पांडित्यपूर्ण/सीखा हुआ
2. सीखी हुई अनुक्रियाएँ मजबूत हो जाती हैं जब उन्हें पुरस्कृत किया जाता है एवं वे कमजोर हो जाती हैं जब उन्हें दण्ड दिया जाता है। उदाहरणार्थ, एक बच्चा अपनी माता के साथ दुर्व्यवहार करता है एवं उसका पिता केवल हँसता है, यह बच्चे को अपनी माँ के साथ कठोर व्यवहार को मजबूती की तरफ ले जाता है क्योंकि उसके पिता ने उसके दुर्व्यवहार पर हँसकर के उसको प्रोत्साहित किया। इसी प्रकार, यदि वह बच्चे को डाँटता है तो बच्चे के द्वारा अपनी माँ के प्रति कठोर व्यवहार की संभावना बहुत कम हो जाती है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-4

1. ब

संदर्भ पुस्तकें

- एडलर, ए. (1927), द प्रैक्टिस् एंड थ्योरी ऑफ इन्डिविजुअल साइकोलॉजी, हारकोर्ट ब्रैस जोवानविक, न्यूयॉर्क।
- आलपॉर्ट, जी. डब्ल्यू. (1961), पैटर्न एंड ग्रोथ इन पर्सनैलिटी, होल्ट राइनहार्ट विंसटन, न्यूयॉर्क।
- बन्डुरा, ए. (1965), इन्फ्ल्युन्स ऑफ मॉड्ल्स रिइनफोर्समेन्ट कन्टिन्जेन्सीज आन द एक्वीजिशन ऑफ इमिटेटिव रेसपान्सेज। जरनल ऑफ पर्सनैलिटी एंड सोसल साइकोलॉजी, 1, 589-95
- कैटेल, आर.बी. (1965), द साइन्टिफिक एनालिसिस ऑफ पर्सनैलिटी, पेन्ग्युइन हारमन्ड्सवर्थ।
- आइजेन्क, एच. जे. (1965), फिक्सन इन साइकोलॉजी, पेन्ग्युइन, हारमन्ड्सवर्थ।
- फ्रायड, एस. (1933) इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स आन साइकोएनालिसिस, होगार्ट प्रेस, लन्दन।
- फ्रायड एस. (1976), द साइकोलॉजी ऑफ एव्रीरडे लाइफ, पेन्ग्युइन, पेलिकन फ्रायड लाइब्रेरी (5) हारमन्ड्सवर्थ (ओरिज नल वर्क पिब्लस्ड 1901)।
- फ्रीडमैन, एम. एन्ड रोजेनमैन, आर. एच. (1974) टाइप ए विहेवियर एंड योर हार्ट, नॉफ, न्यूयॉर्क।
- युंग, सी.जी. (1963), मेमरीस् ड्रीम्स, रेफ्लेक्शन्स। कॉलिन/रुटलेज एंड कीगन पाल, लन्दन।
- मैस्लो,ए. (1970), मोटिवेशन एंड पर्सनैलिटी (द्वितीय संस्करण)। हार्पर एंड रो, न्यूयॉर्क।
- रोजर्स, सी.आर. (1961), ऑन बिकमिन्ग ए पर्सन। हाउटन मिफिन, बोस्टन।
- स्किनर, बी. एफ. (1938), द विहेवियर ऑफ ऑरगनिस्म्। एपल्टन-सेन्ट्यूर-क्राफ्ट्स, न्यूयॉर्क।

पठनीय पुस्तकें

- बैरन, आर. ए (1999), इसेन्सियल्स ऑफ साइकोलॉजी। एलेन एंड बैकन, यू. एस. ए.।
- कून, डी. (2001), इन्ट्रोडक्शन टू साइकोलॉजीः गेटवेज टू माइंड एंड विहेवियर। वर्ड्सवर्थ, यू.एस.ए.।
- फेल्डमैन, आर.एस. (1996), अन्डरस्टैन्डिंग साइकोलॉजी। टाटा मैकग्रा-हिल, नई दिल्ली, भारत।
- फर्नाल्ड, एल. डी. एंड फर्नाल्ड, पी.एस. (1999), इंट्रोक्शन टू साइकोलॉजी। ए.आई.टी.बी.एस. पब्लिसर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, दिल्ली।
- ग्रॉस, आर. (2001) साइकोलॉजीः द साइन्स ऑफ माइंउ एंड विहेवियर। ग्रीन गेट पब्लिसिंग सर्विसेज, यू०के०।
- ग्रॉस, आर. मैकवीन, आर. कूलिकन, एच. क्लैम्प, ए एंड रसेल, जे. (2000) साइकोलॉजीः ए न्यू इंट्रोडक्शन। हॉडर एंड स्टॉउटन, यू.के.।
- कुन्डु, सी. (1977), पर्सनैलिटी डेवलपमेन्टः अ क्रिटिक ऑफ इंडियन स्टडीज। विशाल, कुरुक्षेत्र, भारत।
- नैर्न, जे. एस. (2003), साइकोलॉजीः द एडाप्टिव माइंड। वर्ड्सवर्थ, यू.एस.ए.।
- विटेन, डब्ल्यू. (2000), साइकोलॉजीः थीम्स् एंड वेरिएशन्स। वर्ड्सवर्थ, यू.एस.ए.।
- वेस्टेन, डी. (1999), साइकोलॉजीः माइंड, ब्रेन एंड कल्चर। विले, यू.एस.ए.।

3

व्यवहार के अनुकूलक एवं दुरनुकूलक तरीके

3.0 परिचय

3.1 उद्देश्य

3.2 अनुकूलन का अर्थ

3.2.1 व्यवहार के अनुकूलक तरीके

3.3 दुरनुकूलक व्यवहार

3.3.1 व्यवहार के दुरनुकूलक तरीके

3.4 अनुकूलक व्यवहार एवं मानसिक स्वास्थ्य

3.4.1 मानसिक स्वास्थ्य की विशेषताएँ

3.5 यथार्थात्मक रुप से सामना कारना बनाम रक्षात्मक रुप से सामना करना

3.6 रक्षात्मक व्यवहार

3.7 मनौवैज्ञानिक अथवा मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ, अनुकूलन की असफलता

3.8 व्यक्तित्व एवं व्यवहार में वैयक्तिक विभिन्नताओं की व्याख्या करना

3.9 सारांश

आत्म-मूल्यांकन अभ्यास

आत्म-मूल्यांकन अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

आत्म-निरीक्षण अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

पठनीय पुस्तकें

वेबलिंक्स

3.0 परिचय

आप मानव विकास की प्रक्रिया एवं किस प्रकार से विविध तरह के आन्तरिक एवं बाह्य कारक हमारे विकास एवं समायोजन को प्रभावित करते हैं इस विषय में पहले से ही परिचित हैं। इस यूनिट में हम उन व्यवहारों का विस्तृत रुप से परीक्षण करेंगे जो अनुकूलक एवं दुरनुकूलक नमूनों के विकास में चिंतन और सहयोग करते हैं। पहले भाग में हम व्यवहार के अनुकूलक नमूनों से आपको परिचित कराएँगे। यह भाग इस अंतदृष्टि से संबंधित है कि लोग क्यों एवं कैसे जीवन की परिस्थितियों में प्रतिक्रिया करते हैं एवं उनके अनुकूल बनते हैं। कुछ व्यक्ति अच्छी तरह से अनुकूलन कर लेते हैं एवं परिवर्तन करने में विश्वास का प्रदर्शन करते हैं। व्यवहार के ये तरीके अनुकूली हैं। अगला भाग प्रतिकूली नमूनों से संबंधित है जिसकी परिणित क्रोध, हताशा, हानि और निराशा में होती है। कुछ व्यक्ति प्रत्यक्ष रुप से जिस परिवर्तन का सामना करते हैं उसके अनुकूल नहीं हो पाते हैं। यह व्यवहार का दुरनुकूलक नमूना है जिसका इस भाग में परीक्षण किया गया है।

अगले भाग में हम चर्चा करेंगे कि कैसे अनुकूलक व्यवहार मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक रुप से स्वस्थ लोगों के व्यवहार के तरीके की विशिष्टता में सहायक होता है। दूसरे भाग में हम विविध तरीकों का परीक्षण करेंगे जिसमें लोग दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। इनमें से कुछ व्यवहार जीवन-परिस्थितियों में हमारे अनुकूलन को बढ़ाते हैं वहीं पर अन्य प्रकार के व्यवहार वास्तव में प्रतिकूलन में योगदान दे सकते हैं। इस प्रकार के व्यवहार का ज्ञान हमें अपने एवं साथ ही साथ अन्य लोगों की प्रतिक्रिया को समझने में सहायता करता है। हम संक्षेप में रक्षात्मक व्यवहार के विविध प्ररुपों के विषय में चर्चा करेंगे एवं इस सच्चाई को भी कि कठोर एवं अति-उपयोग धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक बीमारियों के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं।

अन्त में, अन्तिम भाग में हम मानव-व्यवहार में वैयक्तिक विभिन्नता को समझने के लिए अलग-अलग व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस यूनिट को पढ़ने के बाद आप समर्थ होंगे–

- व्यवहार के अनुकूलक एवं दुरनुकूलक तरीकों की प्रकृति का वर्णन करना।
- अनुकूलक व्यवहार एवं मानसिक तथा शारीरिक कुशलता के बीच संबंध की व्याख्या करना।
- मानसिक रुप से स्वस्थ लोगों के व्यवहार की विशेषता का वर्णन करना।
- यथार्थात्मक रुप से सामना करना बनाम रक्षात्मक रुप से सामना करना में भेद करना।
- प्रतिकूलक व्यवहार के तरीके की विविधता की व्याख्या करना।
- किस प्रकार से अनुकूलन में असफलता की परिणीति मनोवैज्ञानिक विकार में होती है, उसका वर्णन करना।
- अनुकूलक व्यवहार में वैयक्तिक विभिन्नताएँ किस प्रकार आवश्यक हैं, उसकी व्याख्या करना।

3.2 अनुकूलन का अर्थ

अनुकूलन का तात्पर्य चिंता एवं प्रतिक्रिया के तरीकों से है जो जीवन की समस्याओं एवं तनावों को कम करने में सहायता करते हैं एवं हमें अपने एवं अन्य लोगों के साथ व्यवहार करना आसान बनाते हैं।

निम्नलिखित भाग अवधारणा के महत्व को समझने में आपके लिए सहायक होगा जिस प्रकार से मानव व्यवहार में उन्हें अपनाया जाता है।

3.2.1 व्यवहार के अनुकूलक तरीके

परामर्शदाता के रुप में बच्चों का सामना करने हेतु अपनी प्रभाविकता को बढ़ाने के क्रम में यह स्पष्ट रुप से समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि अनुकूलक व्यवहार में क्या निहित होता है। निम्नलिखित उदाहरण एक समस्यात्मक परिस्थिति में अनुकूलक प्रतिक्रिया को प्रदर्शित करता है।

“किरन एक बहुत अच्छी छात्रा थी लेकिन कक्षा-10 की बोर्ड परीक्षा का परिणाम उसकी अपेक्षा से बहुत कम था। वह इससे बहुत परेशान थी। वह बहुत शांत हो गई एवं अपने माता-पिता, भाई-बहनों एवं अन्य के साथ बहुत कम अन्योन्य-क्रिया करने लगी। उसने टेलीविजन देखना एवं मित्रों के साथ बाहर घूमने जाना बन्द कर दिया। वह छोटी से छोटी बात पर रोने लगती एवं उदास रहती। उसके माता-पिता उसको लेकर बहुत चिन्तित थे। कुछ दिनों के बाद धीरे-धीरे उसने अपने दुःख से बाहर आने का प्रयास किया एवं अपनी अभिरुचि के क्रिया-कलाप करने लगी तथा सबसे बातचीत शुरु कर

दिया। उसने अपने आप में सोचा कि वह अपनी मार्क-सीट का इन्तजार करेगी और यह देखेगी कि क्या गलत हुआ है। उसने अगली परीक्षा में ज्यादा मेहनत करने का निश्चय किया तथा पढ़ाई में अपनी रणनीति में परिवर्तन के लिए एवं परीक्षा की तैयारी में भी। उसने विचार किया कि परीक्षा में अपने प्रदर्शन में सुधार के लिए वह अपने अध्यापिका से चर्चा करेगी। कुछ ही दिनों में वह बहुत अच्छा महसूस करने लगी एवं अपने सामान्य क्रियाकलापों को फिर से शुरु कर दिया"।

यह अनुकूलन का एक उदाहरण है जिसमें व्यक्ति ने एक अप्रिय परिस्थिति का सामना इस ढंग से करने की कोशिश की जिसने समस्या के समाधान में मदद की। इसका तात्पर्य है–अपनी नकारात्मक भावनाओं-दु:ख, कुंठा एवं क्षति का सामना इस प्रकार से करना कि यह लम्बे समय तक उसके कार्य में नुकसान न पहुँचा सके। एक व्यक्ति समझने की कोशिश करता है कि उसकी अपेक्षा एवं इच्छा के विपरीत परिस्थितियाँ क्यों घटित हुई एवं अपने विचार एवं कार्य में आवश्यक परिवर्तन लाता है। चिन्तन के इस प्रकार के सकारात्मक एवं रचनात्मक तरीके जीवन की समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करने में हमारे आत्म-विश्वास को बढ़ाते हैं। इसे अनुकूलन कहा जाता है। अनुकूलक व्यवहार हमें दबाव को सहन करने की अनुमति देते हैं एवं विपरीत परिस्थितियों के बावजूद हमें अपनी मनोदशा पर नियंत्रण करने के योग्य बनाते हैं। इस प्रकार, वे व्यवहार जो जीवन के दबावों का सामना करने में हमारी सहायता करते हैं, उन्हें अनुकूलक व्यवहार कहा जा सकता है। निम्नलिखित योजनाएँ हमारी अनुकूलन क्षमता को बढ़ा सकती हैं :–

- अपने मन में चल रही समस्या के विषय में धैर्यपूर्वक विचार के लिए अपने को समय देना एवं इसे समझने की कोशिश करना।
- अपनी भावनाओं को किसी ऐसे व्यक्ति से बताना जो आपको एक व्यक्ति के रुप में समझता हो।
- समस्याओं को अधिक वस्तुनिष्ठ एवं तार्किक ढंग से देखना, सबसे अच्छा संभावित समाधान पाने की कोशिश करना जो कार्य के योग्य हो।
- समस्यात्मक परिस्थितियों का सामना करने में अपनी योग्यता में विश्वास करना।
- परिस्थिति की माँग के अनुसार अपने विचारों एवं कार्यों में लचीलापन होना।
- आवश्यकता पड़ने पर सकारात्मक लोगों के साथ समय व्यतीत करना या व्यावसायिक परामर्श प्राप्त करना।
- प्रार्थना, ध्यान या अन्य वस्तु जो शांति प्रदान करती है, उसके साथ आंतरिक आध्यात्मिक शक्ति को जोड़ने तथा इस प्रकार सकारात्मक कार्य के पहल के लिए अपने को मजबूत बनाना।
- जड़ता का त्याग करना एवं अपने को जितना संभव हो सके दैनिक कार्यों में लगाए रखना।

- खेल, नियमित घूमना, संगीत सुनना या किसी अन्य हॉबी (शौक) में व्यस्त रहना जो व्याकुलता को कुछ कम कर सके एवं दिमाग को स्पष्ट चिन्तन के लिए तैयार करे।

क्रियाकलाप-1
1. कुछ व्यक्तियों के बारे में सोचिए जिन्होंने आपके विचार में अपने जीवन में परेशानियों एवं कठिनाइयों को सही ढंग से नियंत्रित किया है। उनके व्यवहार के उन तरीकों की पहचान करिए जिसे आप प्रभावपूर्ण अनुकूलन में सहायक समझते हैं। 2. उन कठिनाइयों के बारे में विचार कीजिए जिन्हें आपने अच्छी तरह से सँभाला है। उन अभिवृत्तियों एवं व्यवहार की पहचान करिए जिसने इन परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करने में आपकी मदद की।

3.3 दुरनुकूलक व्यवहार

दुरनुकूलक उस प्रकार के व्यवहार के तरीकों एवं चिन्तन से संबंधित है जो सामना की जा रही समस्याओं को कम किए बिना हमारे दबावों एवं कठिनाइयों को बढ़ाते या उत्पन्न करते है। निम्नलिखित भाग इस प्रकार के व्यवहारों के बारे में है जो प्रभावशाली समायोजन एवं सामान्य कुशल-क्षेम में बाधा डाल सकते हैं।

3.3.1 व्यवहार के दुरनुकूलक तरीके

दुरनुकूलक व्यवहार परिस्थितियों के संदर्भ में प्रतिक्रिया है जो समस्याओं से संबंधित न होकर तात्कालिक आवेगों द्वारा संचालित होता है। वे हमारी समस्याओं के समाधान में सहायक नहीं होते हैं। वे हमारे अन्दर हमारे आत्मविश्वास को कम करते हैं, हमें नकारात्मक संवेगों के प्रभाव में डालते हैं और दैनिक जीवन की परिस्थितियों का सामना करने में हमारी कार्यक्षमता को कम करते हैं। निम्नलिखित उदाहरण दुरनुकूलक व्यवहार को प्रकट करता है।

''मोना अपनी परीक्षाओं में हमेशा अच्छा प्रदर्शन करती रही है। फिर भी, कक्षा-10 की परीक्षा में उसका परिणाम अपेक्षा के अनुसार नही था। वह इस विषय में बहुत परेशान थी एवं अपनी क्षमता पर संदेह करना शुरु कर दिया। वह अपने मित्रों एवं अन्य किसी से भी मिलना नही चाहती थी एवं बहुत चिड़चिड़ी हो गई। उसने बहुत हल्की छेड़छाड़ पर गुस्सा होना शुरु कर दिया एवं महसूस करती थी कि उससे कोई भी प्यार नहीं करता है। उसकी पढ़ने में अभिरुचि समाप्त हो गई एवं हर चीज में गलती निकालने लगी। उसके माता-पिता उसके विषय में बहुत चिन्तित थे।''

मोना का व्यवहार दुरनुकूलक प्रतिक्रिया का एक उदाहरण है जो कि प्रभावशाली समायोजन एवं कुशल-क्षेम में बाधा डाल सकता है। मोना अपनी समस्या का हल नहीं तलाश कर सकी एवं पढ़ाई में उसकी अभिरुचि समाप्त होने लगी। हम प्राय: अपने दैनिक जीवन में लगातार घटने वाले बहुत से छोटे या बड़े क्षोभ से अतिसंवेदनशील हो जाते हैं। कठिन एवं दबावयुक्त परिस्थितियों में क्रोध एवं दु:ख स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ हैं। फिर भी, जिस प्रकार से हम उनका सामना करते हैं वे सुनिश्चित करेंगे कि भविष्य में इस प्रकार की परिस्थितियों में हम बढ़ते एवं परिपक्व होते हैं या अधिक से अधिक अतिसंवेदनशील होते हैं एवं दुरनुकूलक तरीके से व्यवहार करते रहते हैं। कुछ दुरनुकूलक व्यवहारों को नीचे सूचीबद्ध किया गया है–

- आवेगशील तरीके से समस्याओं के प्रति प्रतिक्रिया करना, जैसे- क्रोध से फट पड़ना, एकान्त में चले जाना, किसी से बात न करना, खाने से इनकार करना आदि।
- समस्या के व्यवहारिक समाधान हेतु प्रयास किए बिना ही इस भावना के साथ समस्या पर चिन्तन करना कि यह मेरे साथ ही क्यों घटित हुई है या कल्पना करना कि किस प्रकार इन्हें होना चाहिए था।
- अनवरत रुप से चिंता करना।
- धूमपान या मद्यपान में अत्यधिक संलग्नता।
- बचाव, जैसे- समस्या के बारे में सोचने की कोशिश न करना एवं इस प्रकार का व्यवहार करना जैसे कि कुछ भी घटित नही हुआ है। इसका यह भी मतलब हो सकता है कि अपनी भावनाओं को अपने तक ही सीमित रखना एवं उसको व्यक्त न करना अथवा विकल्प के तौर पर सभी लोगों से एक साथ बचकर रहना।
- दूसरों या परिस्थितियों पर दोषारोपण करना एवं वास्तविकता को जानने का प्रयास न करना।

क्रियाकलाप-2

1. उन व्यक्तियों को देखिए जो अधिकतर समय अप्रसन्न प्रतीत होते हैं। उनके व्यवहार को उपर्युक्त-तालिका के साथ नजदीकी से तुलना कीजिए। जिन्हें आप देख रहे हैं, उनके व्यवहार के बारे में यह सूची कितना सही वर्णन करती है?
2. कठिन परिस्थितियों में आप अपनी प्रतिक्रिया का परीक्षण कीजिए एवं पहचान कीजिए कि क्या वे अनुकूलक व्यवहार हैं या दुरनुकूलक व्यवहार। परीक्षण कीजिए कि किस प्रकार वे आपको प्रभावित करते हैं।

दुरनुकूलक व्यवहारों की उपर्युक्त सूची से आपको पता चल गया होगा कि दुरनुकूलक व्यवहार वे हैं जो समस्या का वास्तविक समाधान नहीं करते हैं। चिंतन करना, दोषारोपण

करना, चिंता करना, निष्क्रियता या नकारात्मक कार्य आदि समस्या का समाधान करने में सहायता नहीं करते हैं। यदि ये व्यवहार बहुत समय तक रहते हैं तो लोगों के साथ हमारे संबंधों को नुकसान पहुँचा सकते हैं, हमारी कार्य-क्षमता को कम कर सकते हैं एवं हमारे अन्य कर्त्तव्यों एवं जिम्मेदारियों को नियंत्रित कर सकते हैं।

अनुकूलक एवं दुरनुकूलक पृथक श्रेणी नहीं हैं, जैसे यह कहना सही नही है कि एक व्यक्ति या तो अनुकूलक है या दुरनुकूलक। ज्यादातर लोगों में दोनों का मिश्रण है, जैसे कि कभी-कभी वे परिस्थितियों में अनुकूलक तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं एवं किसी अन्य समय में दुरनुकूलक तरीके से। केवल कुछ व्यक्ति ही पराकाष्ठा पर होते हैं। दुरनुकूलक की तरफ झुकाव वाले व्यवहार के साथ प्रतिक्रिया करने से डर, चिंता, अवसाद आदि की तरफ हमारी उद्विनता बढ़ेगी, वहीं पर अनुकूलक तरीके की ओर हमारे व्यवहार के झुकाव से मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होगी। यह प्रत्यक्ष रुप से अनुकूलक व्यवहार एवं मानसिक स्वास्थ्य के बीच संबंध की चर्चा की तरफ ले जाता है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-1

1. अनुकूलक एवं दुरनुकूलक व्यवहार क्या हैं?
2. अनुकूलक एवं दुरनुकूलक प्रतिक्रियाओं के तीन उदाहरण दीजिए।

3.4 अनुकूलक व्यवहार एवं मानसिक स्वास्थ्य

जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अनुकूलक तरीके से व्यवहार की आदत हमें अधिक से अधिक मानसिक स्वास्थ्य की तरफ ले जाती है। जिस प्रकार से स्वस्थ शरीर हमारे शरीर में रोग उत्पन्न करने वाले तत्वों से लड़ने की हमारी क्षमता को बढ़ाता है एवं हमारी ऊर्जस्विता को बढ़ाता है, उसी प्रकार से स्वस्थ दिमाग जीवन की विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के लिए हमारी क्षमता को बढ़ाता है। अपने मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाने से दुरनुकूलक तरीकों से प्रतिक्रिया करने की आदत कम हो जाती है। यह जीवन-परिस्थितियों के लिए एक सराकात्मक एवं संरचनात्मक उपागम का समर्थन करता है। यह हमारी तेजस्विता, आत्मविश्वास, योग्यता एवं साहस को विभिन्न समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करने के लिए बढ़ाता है। सकारात्मक अनुकूलक प्रतिक्रियाएँ अन्तर्मन में शांति एवं सुलह उत्पन्न करती हैं। जिससे व्यक्ति तनावों, चिंता एवं अवसाद से कम उत्तेजित होता है। यह व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों में अस्थायी रुप से परेशान होने के बाद शीघ्रता से मन की सकारात्मक एवं शांतिप्रिय अवस्था में वापस लौटने के योग्य बनाती है।

क्रियाकलाप-3
1. एक व्यक्ति के बारे में सोचिए जो आपके विचार से प्राय: विक्षिप्त रहता है। उसके व्यवहार का निरीक्षण कीजिए एवं देखिए कि क्या उसका व्यवहार दुरनुकूलक व्यवहारों की सूची से मेल खाता है। 2. एक व्यक्ति के विषय में सोचिए जिसने आपको बहुत प्रभावित किया है। उसके व्यक्तित्व के प्रबल पक्षों का वर्णन कीजिए।

उपर्युक्त क्रिया-कलाप से आप पता लगाएंगे कि वे गुण जो हमें प्रसन्न एवं संतुष्ट होने में सहायता करते हैं, वे गुण हैं जो ज्यादातर परिस्थितियों में सकारात्मक रुप से देखने को प्रेरित करते हैं, बेहतर प्रयास से चुनौती का सामना करने के योग्य बनाते हैं एवं अपनी योग्यता में हमारे विश्वास को बढ़ावा देते हैं। मानसिक रुप से स्वस्थ व्यक्तियों की कुछ विशेषताओं को देखते हैं।

3.4.1 मानसिक स्वास्थ्य की विशेषताएँ

मानसिक स्वास्थ्य अवस्था की कुछ विशेषताएँ हैं–

- अपने अन्तर्मन में शांतप्रियता
- सादगी, सहजता एवं स्वभाविकता
- ताकत एवं कमजोरियों के साथ स्वयं तथा अन्य की महत्वपूर्ण तरीके से स्वीकृति।
- नई धारणाओं, विचारों एवं अनुभवों के प्रति उदारता
- वास्तविकता एवं यथार्थवादी पूर्वाभिमुखीकरण की सहमति
- वस्तुनिष्ठता
- अभिशंसा, नैतिक दृढ़ता एवं नैतिक जीवन-स्तर का साहस
- संवेगात्मक सुरक्षा एवं आन्तरिक बल
- आत्म-अनुशासन
- प्रजातांत्रिक रुझान, मतों की विभिन्नता को स्वीकार करना एवं सम्मान करना
- दूसरों के लिए देखभाल एवं चिंता करना।

आत्मसिद्धि पर मैस्लो का कार्य इस संदर्भ में मूल्यवान है। आत्मसिद्धि का सम्प्रत्यय मानसिक स्वास्थ्य से बहुत करीब से संबंधित है। आत्मसिद्धि का अर्थ है- क्षमता एवं योग्यता को अधिकतम रुप में विकसित करना जो हम सबके अन्दर निहित है। मैस्लो असाधारण रुप से प्रभावशाली जीवन जीने वाले और अपने योग्यता एवं क्षमता का लगभग पूर्ण उपयोग करने वाले व्यक्तियों का अध्ययन किया जिनमें अलबर्ट आइंसटीन, विलियम जेम्स, इलीनर रोजवेल्ट एवं अब्राहम लिंकन थे। उन्होंने कलाकारों, लेखकों एवं अन्य सृजनात्मक व्यक्तियों पर व्यक्ति अध्ययन भी किया। उन्होंने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि न केवल उच्च रुप से सम्मानित व्यक्ति बल्कि

सामान्य लोगों जैसे- गृहिणी, बढ़ई, लिपिक अथवा विद्यार्थी भी सृजनात्मक रुप से रह सकते हैं एवं अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग कर सकते हैं। उनका मुख्य योगदान सतत् व्यक्तिगत विकास की संभावनाओं पर ध्यान आकृष्ट करना था। उन्होंने आत्मसिद्धि को केवल एक बार प्राप्त की जाने वाली साधारण प्रयोजन न मानकर एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया के रुप में समझा। अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने आत्म सिद्धियों के द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली निम्नलिखित विशेषताओं को पाया–

1. *वास्तविकता के प्रति व्यापक दृष्टिकोण–* उनमें परिस्थितियों को सही एवं ईमानदारी से समझने की योग्यता थी।
2. आत्म एवं अन्य को सहजता से स्वीकार करना, वे अपने मानवीय स्वभाव को इसकी कमियों के साथ स्वीकार करने में सक्षम थे। अन्य लोगों की कमियों एवं मानव दशा के अन्तर्विरोधों को भी मनोविनोद एवं सहनशीलता के साथ स्वीकार करते थे।
3. *स्वतः प्रवृत्ति–* अपनी रचनात्मकता को दैनिक क्रिया-कलापों में शामिल करते थे। असाधारण रुप से जिन्दादिल, कार्य में संलग्न एवं स्वतः प्रवृत्ति उनकी आदत थी।
4. *कार्य-केन्द्रीकरण–* उनका एक उद्देश्य था जो जीवन में पूरा करना था या कुछ कार्य या अपने से बाहर की समस्या की खोज में लगे रहना था।
5. स्वतंत्रता- अन्य लोगों या बाह्य प्रभुत्व के ऊपर निर्भर रहने से स्वतंत्र थे। वे उपाय कुशल एवं स्वतंत्र थे।
6. *प्रशंसा की अनवरत् स्फूर्ति–* आत्म-सिद्ध जीवन के मूलभूत पदार्थों की लगातार नए तरीके से प्रशंसा करते प्रतीत होते हैं। सूर्यास्त की सुन्दरता हो या एक फूल की, उसी स्फूर्ति एवं उल्लास के साथ महसूस की जा सकती है यद्यपि ये सब एक सामान्य अनुभव हो सकते हैं। उनमें एक कलाकार या बच्चे की तरह किसी वस्तु को देखने की पवित्रता होती है।
7. *मानवता के साथ मैत्री भाव–* सामान्य रुप से अन्य लोगों एवं परिस्थितियों के साथ गहन तादात्म्य महसूस करते थे।
8. गहन, आत्मीय रिश्तों के प्रतीक गूढ़ अन्तर्वैयक्तिक संबंध स्थापित करना।
9. *मनोविनोद के अनुकूल भावना–* यह किसी को इंगित करके हँसने की क्षमता थी जो हँसी-मजाक के लिए हो।
10. *चरमसीमा का अनुभव–* चरमसीमा के अनुभवों को बार-बार दोहराना। ये अनुभव उल्लास, सद्भाव की भावनाओं के गहन अर्थ एवं ब्रह्मांड के साथ एकत्व की भावना के प्रतीक के रुप में थे। संक्षेप में, आत्मसिद्धि सुरक्षित, चिंतामुक्त, स्वीकृत, प्रिय, दूसरों के द्वारा स्नेहिल एवं जिन्दादिली की भावना महसूस करते हैं।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-2

1. आत्म-सिद्धियों की कम से कम पाँच या छः विशेषताओं को बताइये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बेहतर मानसिक स्वास्थ्य की तरफ हमारी प्रवृत्ति हमें अधिक से अधिक संतुष्टि एवं आन्तरिक प्रसन्नता की तरफ ले जाती है। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि स्थितिप्रज्ञ की अवधारणा जो भगवद गीता में स्पष्ट की गई है, भगवद्गीता जीवन के विज्ञान पर गूढ़ ज्ञान एवं हिन्दू धर्म का सबसे प्रतिष्ठित धर्मग्रंथ है, मानव एवं विश्व की अद्भुत अंतर्दृष्टि के कारण यह सम्पूर्ण विश्व में सम्माननीय है। स्थितप्रज्ञ की अवस्था मानव सम्पूर्णता की पराकाष्ठा को स्पष्ट करती है। साधारण शब्दों में, स्थितप्रज्ञ का अर्थ उससे संबंधित है जिसका दिमाग सदैव अविचलित रहता है, सुखद अवस्था का आनन्द लेते हुए, जीवन के उतार-चढ़ाव से बिल्कुल निरपेक्ष। यह मोक्ष अथवा आत्म-ज्ञान के रुप में जाना जाता है जो कि अहम् की पूर्णतया समाप्ति एवं समस्त प्राणियों के साथ एकात्मकता को सूचित करता है। मानसिक स्वास्थ्य पर कोई भी चर्चा मोक्ष अथवा अनासक्ति की अवस्था के प्रसंग के बिना अधूरी है जिसे भारतीय दार्शनिक प्रथाओं में सभी व्यक्तियों के द्वारा हासिल करने के लिए अंतिम एवं निर्णायक माना गया है।

क्रियाकलाप-4

महान व्यक्तियों जैसे गांधी, आइंसटीन एवं अन्य का अध्ययन कीजिए जिन्होंने कई पीढ़ियों के लोगों को प्रेरित किया है। परीक्षण कीजिए कि उन्होने अपना जीवन किस प्रकार से जिया एवं किस प्रकार से लोगों को अपना अनुसरण करने के लिए प्रेरित किया।

महान् व्यक्तियों का जीवन हमें अनुकूलक तरीके के व्यवहार के बारे में बताता है। इन व्यवहारों में बहुत अधिक भिन्नताएँ है जो इस बात पर निर्भर हैं कि वे व्यक्ति कहाँ एवं किस समय थे, यद्यपि व्यवहार के तरीके एक समान नहीं है फिर भी समानताएँ एवं समायोजन का तरीका स्पष्ट दिखाई देता है।

अब तक हम अनुकूलक एवं दुरनुकूलक व्यवहार के तरीकों से परिचित हो चुके हैं, मानसिक स्वास्थ्य के साथ उनका सम्बंध एवं मानव सम्पूर्णता की संभावनाओं को जैसा कि भारतीय दार्शनिक साहित्य में स्पष्ट किया गया है। अगले भाग में हम अनेकों प्रकार के सामना करने वाले (coping) व्यवहारों का व्यापक रुप में परीक्षण करेंगे जिसे लोग अपने जीवन में दबावों एवं कठिनाइयों का सामना करने के लिए अपनाते हैं एवं वह तरीका जिस प्रकार से यह उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

3.5 यथार्थात्मक रुप से सामना करना बनाम रक्षात्मक रुप से सामना करना

अपने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में ग्रहण करने, सोचने एवं कार्य करने के संदर्भ में हम सभी अलग-अलग एवं विशिष्ट हैं। हम, परिवार, कार्यक्षेत्र, रिश्तों आदि विभिन्न बाहरी स्त्रोतों से आने वाली माँगों का लगातार सामना करते रहते हैं। हम अपने अन्दर से आने वाली आवश्यकताओं का दबाव भी महसूस करते हैं जैसे- हम अध्ययन या कार्य में बहुत अच्छा करना चाहते हैं, हम दूसरों की असहमति से डरते हैं, हम अपने मित्रों को समय देना चाहते हैं या कुछ पढ़ने के लिए या स्वास्थ्य के मुद्दे आदि। जब ये आवश्यकताएँ एवं माँग आरामदायक एवं सहनशील सीमा के अन्दर होती हैं तब उनका बिना किसी अतिरिक्त दबाव के सामना किया जा सकता है। लेकिन जब वे अधिक हो जाती हैं उससे ज्यादा जितना हम आराम से सामना कर सकते हैं, कठोरता या कालावधि के संदर्भ में वे हमारी अनुकूलक क्षमताओं या कौशलों से विशेष माँग करते हैं। इस प्रकार की परिस्थितियों के अन्तर्गत लोग विभिन्न प्रकार की अनुकूलक प्रतिक्रियाओं का प्रदर्शन करते हैं जैसा कि नीचे दिया गया है–

- *प्रभावकारी ढ़ंग से सामना करना–* वे समस्या को समझने की कोशिश करते हैं एवं उसका कुछ समाधान खोजते हैं। वस्तुनिष्ठ रुप में परिस्थितियों को उनके वास्तविक रुप में समझते हैं वे चाहे कितने भी कष्टदायक हों एवं इच्छा के अनुसार कार्यवाही करते हैं जो उन्हें परिस्थितियों का सामना करने में सहायता करेगा।
- *रक्षात्मक व्यवहार–* समस्या की अनदेखी या उपेक्षा करना एवं विपथन तलाश करना।
- चिड़चिड़ा एवं आक्रामक होना, समस्याओं का सामना करने से मना करना।

उपर्युक्त प्रतिक्रियाओं में पहला वास्तविक या प्रभावकारी ढ़ंग से सामना करना कहा जा सकता है वहीं पर दो अन्य को विभिन्न स्तरों पर दुरनुकूलक समझा जा सकता है। कभी-कभी समस्या की अनदेखी या उपेक्षा परिस्थितियों का सामना करने का एक अच्छा तरीका हो सकता है लेकिन हमेशा नहीं। उपेक्षा वास्तव में अधिक कठिनाई की तरफ ले जा सकती है क्योंकि समस्या यथावत् रहती है। बार-बार चिंता एवं चिड़चिड़ाहट न केवल दूसरों को बल्कि अपने को भी परेशान करती है। इस प्रकार हमारे व्यवहार का तरीका व्यक्तित्व को बढ़ाने एवं सामाजिक रुप से प्रभावी होने से लेकर अपने एवं अन्य लोगों के प्रति नितान्त विघटनकारी प्रतीत होता है। उपर्युक्त उल्लिखित व्यवहारों में से पहला हमारे जीवन की वास्तविकताओं के अनुकूल होने में सबसे प्रभावकारी तरीका है जिसमें आत्मविश्लेषण, वस्तुनिष्ठता एवं ताकत की आवश्यकता होती है जिससे हम इच्छित कार्य संपादित करते हैं। दो अन्य तरीकों में विभिन्न स्तर

के रक्षात्मक रुप से सामना करने वाले व्यवहार निहित हैं जिसे हम विस्तृत रुप से वर्णन करेंगे।

रक्षात्मक रुप से सामना करने का अर्थ है कि इस प्रकार से परिस्थितियों में प्रतिक्रिया करना जो नकारात्मक भावनाओं से कुछ आराम प्रदान करे जैसे- चिंता, दुख एवं अपराध को वास्तविकता के मिथ्या वर्णन के द्वारा कम करना। उदाहरणार्थ, दूसरे लोगों में गलतियाँ ढूँढ़ना जब वे हमारी आलोचना करते हैं या सफाई देना जब किसी कार्य को पूरा नहीं कर पाते जिसकी हमसे अपेक्षा की गई थी। इस प्रकार के रक्षात्मक व्यवहार हमें उस तरह के प्रत्यक्ष विचार या भावना से बचाते हैं जो कष्टदायक हो एवं सहन करना कठिन हो।

रक्षात्मक व्यवहार किसी को दुख एवं चिंता से रक्षा करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं एवं इस प्रकार आत्म-सम्मान की रक्षा करते हैं। यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि कोई अपने रक्षात्मक व्यवहार के विषय में जान सकता है या नहीं जान सकता है। कोई अपने अन्दर वास्तविक आवेग के विषय में नहीं जान सकता है जिसने रक्षात्मक व्यवहार के उद्यत किया यदि किसी को जानकारी है फिर भी वह अपने रक्षात्मक व्यवहार की प्रकृति को नहीं पहचान सकता है।

रक्षात्मक व्यवहार अधिकतर दिमाग की अचेतन या अवचेतन अवस्थाओं में संचालित होते हैं। ये हमारे पर्यावरण में उपस्थित लोगों से अनजाने में भी अर्जित किए जाते हैं। हम उन्हें सोच-समझकर प्रयोग नहीं करते हैं। वे उन परिस्थितियों में स्वत: हो जाते हैं जो हमारे लिए कष्टदायक एवं डरावनी होती हैं। जिस प्रकार से हमारी शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हमारे शरीर को नुकसानदेह परिस्थितियों से रक्षा करने के लिए स्वत: प्रवृत्त होती हैं उसी प्रकार व्यवहार का रक्षात्मक तरीका हमारे मनोवैज्ञानिक आत्म या अहम् को चिंताओं एवं दु:खों से बचाने के लिए स्वत: आ जाता है। धीरे-धीरे इन्हें सीखा जाता है क्योंकि वे चिंता एवं दु:ख को बहाना बनाकर के या समस्या की अनदेखी करके कम कर देते हैं।

रक्षात्मक व्यवहार को विभिन्न रुपों में व्यक्त करते हैं जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है।

3.6 रक्षात्मक व्यवहार

विविध प्रकार के रक्षात्मक व्यवहारों की पहचान करना एवं दिमाग की अचेतन कार्य अवस्था को आवरण मुक्त करना फ्रायड के सबसे बड़े योगदान थे जिसने हमें मानव-मस्तिष्क को समझने योग्य बनाया। आज यह अच्छी तरह से स्वीकार किया गया है कि सभी प्रकार के तंत्रिका-विकार (जिसे मानसिक विकृति कहा जाता है) रक्षात्मक व्यवहार के अतिश्योक्तिपूर्ण प्रयोग का प्रकटीकरण है। सामान्य रुप से कहा गया है एवं

यह कहा भी जा सकता है कि निम्न आत्म-सम्मान को उच्च संवेगात्मकता के साथ जोड़ने से एवं समुचित संवेगात्मक सुरक्षा की कमी एक व्यक्ति को रक्षात्मक व्यवहार के अतिश्योक्तिपूर्ण प्रयोग के प्रति उत्तेजित कर सकती है। रक्षात्मक व्यवहार जान-बूझकर नहीं होते हैं, वे चेतन या अचेतन स्तरों पर संचालित होते हैं। रक्षात्मक रुप में सामना करना सामान्य है एवं ये प्राय: हमारे दैनिक जीवन में अवरोध लाए बिना चिंता एवं अपराध को मिटाने में हमारी सहायता करते हैं। अनेकों प्रकार के रक्षात्मक व्यवहारों को नीचे दिया गया है।

विस्थापन– एक व्यक्ति अपनी भावनाओं को मूल स्त्रोत से दूसरे लक्ष्य की तरफ अनुप्रेषित करता है। उदाहरणार्थ, आप अपने शिक्षक से बहुत नाराज हैं परन्तु अपने क्रोध को उससे व्यक्त नही कर सकते हैं। आप घर जाते हैं एवं छोटे से छोटे बहाने पर आप रोना एवं चिल्लाना शुरु कर देते हैं यदि आपकी माँ कुछ कहती हैं। इस प्रकार की परिस्थिति में आप अपने क्रोध की प्रतिक्रिया को शिक्षक से माँ की तरफ विस्थापित कर रहे हैं क्योंकि आप अपनी माँ से आजादी ले सकते हैं परन्तु शिक्षक से नही। यह चेतन प्रतिक्रिया नही है बल्कि यह अपने आप से घटित होती है।

युक्तिकरण– अपने एवं अपने कार्यों को उचित ठहराने के लिए अनेकों प्रकार के तर्क प्रस्तुत करना। इसका तात्पर्य है कि किसी महत्वहीन कार्य के लिए तर्कपूर्ण व्याख्या करना जो आपके साथ हुआ है और आप स्वयं को दोषारोपण एवं अपराध से मुक्त करना चाहते हैं। उदाहरणार्थ, जब आप परीक्षा में निम्न स्तरीय निष्पादन के बाद कहते हैं कि अध्यापक ने पक्षपात किया था या प्रश्न बहुत कठिन थे बजाय इसके कि आप अपने सही ढंग से प्रयास न कर पाने की कमी को जानने की काशिश करें।

प्रक्षेपण– अस्वीकृतयोग्य संवेगों या भावनाओं को दूसरों पर आरोपित करना। चिंता को दूर करने के लिए हम अपने स्वीकार न किए जाने वाले विचारों एवं भावनाओं को दूसरों पर आपोपित कर सकते हैं। आप अपने पिता से नफरत करते हैं लेकिन यह आपकी चेतना द्वारा स्वीकार किए जाने योग्य नही है इसलिए आप विश्वास करते हैं कि आपके पिता आपसे नफरत करते हैं।

प्रतिक्रिया निर्माण– भावनाओं को इसके विपरीत दिशा में मोड़ना। परेशान करने वाली भावनाओं एवं विचारों को विपरीत रुप में अभिव्यक्त करना। अचेतन रुप में आप पूर्णतया अपने माता-पिता या बच्चे को नापसंद या नफरत कर सकते हैं लेकिन आप उनके लिए अत्यंत प्रेम महसूस कर सकते हैं। एक कर्मचारी जो अपने बॉस से बहुत नाराज है, वह उनके प्रति दयालुता एवं उदारता के साथ पेश आ सकता है। इस प्रकार के उदाहरण प्राय: तंत्रिका-व्यवहार में मिलते हैं।

अस्वीकरण– संतर्जक (अशुभ) विचारों एवं परिस्थितियों को स्वीकार करने से इनकार करना, आशा के विपरीत अत्यन्त अशुभ समाचार सुनने पर कोई प्राय: यह मानने एवं विश्वास करने को तैयार नहीं होता कि यह घटित हो चुका है। किसी को घटना की अनिवार्यता को पहचानने में कुछ समय लगता है। कोई यह महसूस करता है कि गलत समाचार ही होगा।

दमन– संतर्जक (अशुभ) विचारों को अपनी जानकारी से हटाना एवं इसकी स्मृति को निकालना। हमारी जानकारी के बिना ही यह अवचेतन अवस्था में संचालित होता है। निश्चित तौर से कष्टकर भावनाओं अथवा स्मृतियों का दमन इसका एक सौम्य उदाहरण है क्योंकि हम जान-बूझकर अपने दिमाग को कहीं और लगाने की कोशिश करते हैं ताकि हम इसके द्वारा उत्पीड़ित न हो सकें।

प्रतिगमन– एक पुराने, साधारण रुप से अपरिपक्व व्यवहार को अपनी भावनाओं के द्वारा बाहर निकालना जो कि प्रौढ़ावस्था की तुलना में कम परिपक्व अवस्था में उपयुक्त हो सकता है। उदाहरणार्थ, नाराज होने पर चिल्लाना एवं समान फेंकना, बीमार होने पर परिवार के द्वारा अत्यधिक ध्यान देने की इच्छा करना।

उदात्तीकरण– कष्टकारी भावनाओं एवं संवेगों को किसी रचनात्मक एवं संरचनात्मक कार्य में बदल देना। कैंसर से पीड़ित एक महिला किसी अन्य कैंसर रोगी के लिए कार्य शुरु कर देती है। कला एवं साहित्य के महान कार्य जीवन की इसी प्रकार की दु:खद घटनाओं से निकल सकते हैं परन्तु बाद में यह स्वयं के लिए शक्ति के रुप में हो सकते हैं एवं किसी के जीवन को बदल सकते हैं।

क्रियाकलाप-5
यह जानने के लिए अपना परीक्षण कीजिए कि क्या आप कभी-कभी रक्षात्मक व्यवहारों को अपनाते हैं। इस प्रकार की परिस्थतियों का सामना करने के लिए विकल्प के तरीके सोचिए।

यदि आप सावधानीपूर्वक निरीक्षण करते हैं तब आपको पता चलेगा कि उपर्युक्त उल्लिखित रक्षा युक्तियाँ उदात्तीकरण को छोड़ करके, यह सब एक तरह से कष्टकारी घटनाओं एवं परिस्थितियों से बचने एवं मिथ्या वर्णन के प्रयास हैं जो हमारे ऊपर इनके प्रभाव को कम करते हैं। फिर भी इस प्रकार के व्यवहार दुरनुकूलक एवं रोगात्मक भी हो सकते हैं जब वे किसी की परिपक्वता अवस्था से जिद्दी, अति-प्रयोग एवं अनुचित हो जाते हैं एवं परिस्थिति की वास्तविकता के वर्णन से बाहर हो जाते हैं। इस प्रकार का व्यक्ति दिमाग एवं व्यवहार का लचीलापन खो देता है एवं इस प्रकार ग्रहण करने, चिन्तन करने एवं कार्य करने का जिद्दी तरीका विकसित करता है। धीरे-धीरे यह हमें

कमजोर करता है, वास्तविकता को देखने की हमारी क्षमता को घटा देता है एवं हमारे व्यवहार को अप्रासंगिक एवं प्रभावहीन बना देता है। अपने उग्र रुप में इस प्रकार का व्यवहार गंभीर मनोवैज्ञानिक समस्याओं के लिए रास्ता खोल देता है जो अगले भाग का शीर्षक है।

3.7 मनोवैज्ञानिक अथवा मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ–

अनुकूलन की असफलता

प्रत्येक समाज में इस प्रकार के व्यक्ति हैं जो विविध प्रकार के मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से पीड़ित हैं। इस दशा का कारण अभी भी अस्पष्ट है परन्तु यह निरीक्षण किया गया है कि जीवन के प्रारम्भिक अवस्था के अनुभव, जीव-रासायनिक संघटन एवं पर्यावरणीय दबाव मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं जिसे मनोवैज्ञानिक या मानसिक विकार भी कहते हैं। बहुत निम्न आत्म-सम्मान, असफलता एवं कुंठा, सहारे की कमी एवं उच्च स्तर का दबाव इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। नीचे विविध प्रकार के मनोवैज्ञानिक विकारों की सूची दी गई है, यद्यपि वे बहुत गंभीर अवस्थाएँ नहीं हैं फिर भी वे हमारे दैनिक जीवन में मुख्य रुप से व्यवधान उत्पन्न करते हैं।

चिरकालिक दुश्चिंता दशा–

अयथार्थवादी या अत्यधिक दुश्चिंता एवं तनाव जिससे हम अपने दैनिक में गुजरते हैं प्राय: स्वतंत्र उत्तेजन साथ लाते हैं। उदाहरणार्थ, तीव्र हृदय गति, अतिसार, बेचैनी, कम्पन, बार-बार लघुशंका जाना आदि।

मनोग्रस्ति बाध्यता दशा–

यह भी दुश्चिंता की एक दशा है जहाँ पर व्यक्ति के मनोग्रस्ति की आवर्ती हो रही है (निरंतर विचार, चिन्तन, आवेग अथवा प्रतिरुपों की जो कि संवेदनहीन एवं अन्तर्वेधी रुप में ग्रहण किए जाते हैं) अथवा बाध्यता (आवृत्तीय रुढ़िवादी व्यवहार जैसे-बार-बार हाथ साफ करना, सख्त आदेश के लिए अत्यंत चिंता करना जिसमें अत्यधिक समय नष्ट होता है एवं दैनिक जीवन में व्यवधान उत्पन्न होता है।) ये कठोर होते हैं, समय नष्ट करते हैं, तनावयुक्त होते हैं एवं दैनिक जीवन के साथ ही साथ सामाजिक एवं पेशेगत कार्य को भी अस्त-व्यस्त करते हैं।

दुर्भीति (फोबिया)–

पशुओं, कीड़ों, ऊँचाई, पानी, आग, खुली या बंद जगह आदि से अत्यधिक अविवेकशील तरीके का डर। एक व्यक्ति को एक से अधिक पदार्थों से दुर्भीति हो सकती है।

विच्छेदी दशा–

पहचान, स्मृति या संज्ञान के सामान्य रुप में समाकलनात्मक कार्यों में व्यवधान या प्रत्यावर्तन जैसे- विच्छेदी स्मृति-लोप, आत्मविस्मृति, बहुल व्यक्तित्व या विच्छेदी पहचान विकार।

विच्छेदी स्मृतिलोप में चयनात्मक स्मृतिभ्रंश होता है जिसका कोई आंगिक करण नही होता है। एक व्यक्ति अपने अतीत के बारे में कुछ भी याद नहीं कर सकता है या विशेष अवसरों, स्थानों, व्यक्तियों आदि को याद नहीं कर सकता है जबकि दूसरी घटनाओं के लिए उनकी स्मृति बिल्कुल ठीक होती है।

विच्छेदी आत्मविस्मृति का लक्षण है कि अपने घर एवं कार्य स्थान से चले जाना, एक नई पहचान की कल्पना करना तथा पुरानी पहचान को याद करने में असमर्थ होना।

विच्छेदी पहचान विकार या बहुल व्यक्तित्व वाला व्यक्ति प्रत्यावर्ती व्यक्तियों की कल्पना करता है जो आपस में एक दूसरे के विषय में जानकारी रख सकते हैं अथवा नहीं भी रख सकते हैं।

तांत्रिकातापी अवसाद–

चिरकालिक अवसादात्मक भावदशा जो सप्ताहों एवं महीनों तक रहती है। यह निम्न बल एवं आत्मविस्मृति, निम्न आत्म-सम्मान, खराब एकाग्रता, अरुचिकर एवं असहाय की भावना, खाने एवं निद्रा में व्यवधान से पहचानी जाती है।

परिवर्तन दशा–

शारीरिक प्रकार्यो में क्षति या परिवर्तन जो शारीरिक विकार के रुप में बताया जाता है परन्तु वास्तव में तनाव एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं की प्रतिक्रिया है जैसे पक्षाघात, दौरा, पेशीय-समन्वयन विकृति, धुंधला दिखाई देना, शरीर के अंगों में क्षति या संदेवन विकृति आदि।

मन:कायिक रुग्णता–

शरीर के सभी रोगों में एक मनोवैज्ञानिक तत्व होता है। रुग्णता का स्थायित्व या धीमी गति से उसका ठीक होना आदि हमारी अभिवृत्ति, आशावाद, ठीक होने की इच्छाशक्ति एवं अनुशासित जीवन को प्रभावित करता है। मन:कायिक रुग्णता के कुछ उदाहरण हैं- दमा, नासूर, उच्चरक्तचाप जिसमें मनोवैज्ञानिक एवं जैविक दोनों आधार होते हैं।

स्वकायदुश्चिंता रोग–

कुछ व्यक्तियों में पूर्वधारणा अत्यधिक डर या विश्वास के साथ होती है कि उन्हें गंभीर बीमारी है जो कुछ निशानों या संवेदनाओं पर आधारित होती है और उसे शारीरिक

रुग्णता के प्रमाण के रुप में मान लेते हैं। चिकित्सा रिपोर्ट में किसी लक्षणों को न पाने पर भी उन्हें विश्वास नही होता है कि वे वास्तव में किसी रोग से पीड़ित नही हैं।

आप आश्चर्य कर रहे होंगे कि कुछ व्यक्ति इन समस्याओं को क्यों विकसित कर लेते हैं। यह आवश्यक नही है कि उनके जीवन की अत्यधिक विषय परिस्थितियाँ इसके लिए उत्तरदाई हैं। कुछ लोग इनके प्रति दूसरों की अपेक्षा में ज्यादा उत्तेजक हैं और यह उत्तेजना प्रारम्भिक जीवन के अनुभवों, तुनकमिजाज प्रकृति जिसमें हमारी जीवन-रसायन संरचना एवं तंत्रिका रसायन और जीवन की परिस्थितियाँ भी भूमिका अदा करती हैं। अगले भाग में, हम विविध दृष्टिकोणों पर संक्षेप में परीक्षण करेंगे जो कि हमारे दृष्टिकोण, चिन्तन, भावना एवं कार्यों में वैयक्तिक भिन्नता की व्याख्या करने का प्रयास है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-3

1. प्रत्येक मनोवैज्ञानिक रक्षा व्यवहारों के एक-एक उदाहरण दीजिए।
2. रक्षात्मक व्यवहारों की पहचान कीजिए जो निम्नलिखित परिस्थितियों में प्रत्येक में संचालित हैं:

   अ. मीरा की अपनी सहेली से लड़ाई हुई। वह घर पहुँची एवं उसकी माँ ने उससे कुछ कार्य करने के लिए कहा जो कि काफी समय से लम्बित था। मीरा अपनी माँ के ऊपर बहुत चिड़चिड़ा गई एवं उनके ऊपर आरोप लगाया कि वह उसके पीछे हमेशा पड़ी रहती हैं।

   ब. कपिल अपने परीक्षा परिणाम पर बहुत दुःखी था एवं उसने इसके लिए अध्यापक के पक्षपात पर दोषारोपण किया।

   स. पारुल को अपने दोस्त के संगीत की योग्यता के विषय में ईर्ष्या है। उसकी अनुपस्थिति में उसके बारे में नकारात्मक एवं खराब बातें कहती है एवं जब वह उपस्थित रहती है तब उसके सामने उसकी योग्यता के बारे में अच्छी बातें कहती है एवं प्रशंसा करती है।

   द. दीपक को वह घटना याद नही है जब उसे समुद्र में डूबने से बचाया गया था।

   क. मीतू ऑफिस में अपने सहायक से बहुत नाराज था एवं उसने उसके ऊपर सामान फेंकना शुरु कर दिया।

   ख. एक दम्पत्ति ने अपना पुत्र सड़क दुर्घटना में खो दिया। उन्होंने दुर्घटना पीड़ितों की मदद करने के लिए एक संगठन बनाया।

3.8 व्यक्तित्व एवं व्यवहार में वैयक्तिक भिन्नता की व्याख्या करना

आप आश्चर्य कर रहे होंगे कि लोग एक दूसरे से इतना अधिक अलग रुप में व्यवहार क्यों करते हैं, कुछ व्यक्ति दूसरों की तुलना में मानसिक स्वास्थ्य एवं अपनी अनुकूलक क्षमता के संदर्भ में अधिक अनुकूलक व्यवहार के तरीके क्यों अर्जित कर लेते हैं। मानव-व्यवहार में विभिन्नता को समझना मनोविज्ञान का सामना करने के लिए एक मुख्य चुनौती है। असंख्य कारक हमारे व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा, इसका हमारे ऊपर प्रभाव अत्यधिक अन्योन्य क्रियात्मक एवं गुणात्मक है जैसा कि वे हर समय एक दूसरे के साथ गतिशील अन्योन्यक्रिया करते हैं एवं उस तरीके में थोड़ा परिवर्तन करते रहते हैं जिसमें हम अपने जीवन की परिस्थितियों को ग्रहण करते एवं प्रतिक्रिया करते हैं। इस प्रकार हम अपने जीवन के अनुभवों के साथ अनवरत परिवर्तन करते रहते हैं। यह अत्यन्त रुप से जटिल सटीक उत्तर की खोज के लिए प्रेरित करता है। फिर भी हम इस प्रकार के अनगिनत कारकों को संक्षिप्त कर सकते हैं जो विभिन्न प्रकार के व्यवहार के तरीके की प्राप्ति से संबंधित है एवं तीन श्रेणियों में उल्लिखित है:-

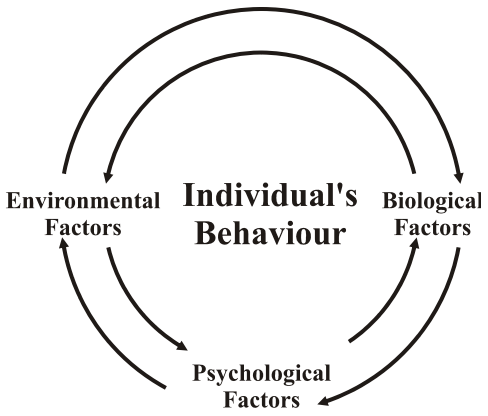

Fig. 3.1 : *Factors Influencing Acquisition of Behavioural Patterns*

पर्यावरणीय कारक

पर्यावरणीय कारकों जैसे परिवार, विद्यालय, पास-पड़ोस, समाज एवं संस्कृति के महत्व को हमारे अनुकूलक व्यवहारिक क्षमताओं का निर्माण करने में कम नही आँका जा सकता है। ये सब स्वभाव में स्थायी नहीं है, ये समय के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। इनका प्रभाव सभी व्यक्तियों पर समान नही है क्योंकि हर व्यक्ति का अपना स्वयं का आंतरिक जैविक स्वरुप होता है जो उनके पर्यावरणीय प्रभावों को अपने विशिष्ट ढंग से प्राप्त करने एवं सुरक्षित रखने के तरीके में फेरबदल करता है। अनेकों जैविक कारकों जैसे जैव-रसायनिक संरचना, जीन, अक्षमता, रोग इत्यादि भी हमारे व्यवहार में अंतर उत्पन्न करने के महत्वपूर्ण साधन हैं। इस प्रकार हम सब एक विशेष जैविक संरचना के साथ पैदा हुए हैं जो व्यक्ति को निश्चित तरीके के व्यवहार में पहले से ही प्रवृत्त करता है और हमारे प्रतिक्रिया करने की आदतों को प्रभावित करता हैं। जैसा कि नवजात शिशुओं के व्यवहार में भी विभिन्नता दिखाई देती है जैसे- कुछ शिशु अधिक रोएँगे, चौंकने की बेहतर प्रतिक्रिया दिखाते हैं, भोजन एवं निद्रा के व्यवहार में विभिन्नता दिखाते हैं।

मनोवैज्ञानिक कारक

अन्तर्वैयक्तिक या अतींद्रिय कारक जैसे अतीत के अनुभव, संज्ञानात्मक संरचनाएँ- अभिवृत्तियाँ, विश्वास, मूल्य आदि, व्यक्तित्व विशेषकों, तुनकमिजाजी एवं संवेगात्मकता, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ आदि मानव व्यवहार में अंतर के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। उपर्युक्त कारकों की भूमिका को स्पष्ट करने के लिए अनेकों मनोवैज्ञानिकों द्वारा बहुत सी व्याख्याएँ दी जा चुकी हैं। अलग-अलग सैद्धान्तिक ढ़ाँचों से निकली इन व्याख्याओं को चार मुख्य श्रेणियों मनोगतिक, व्यवहारवादी, संज्ञानात्मक एवं मानवतावादी तथा अस्तित्व परक दृष्टिकोणों में वर्गीकृत किया जा सकता है। (इन दृष्टिकोणों की अधिक जानकारी के लिए इस मॉड्यूल का यूनिट-2 ''व्यक्तित्व की प्रकृति एवं विकास पर परिप्रेक्ष्य" देख सकते हैं''।

मनोगतिक विचार– हमारे अवचेतन एवं अचेतन मस्तिष्क में अंतर्निहित विशेष संवेगात्मक अनुभवों पर बल देता है। जीवन की शुरुआत के कुछ वर्षों शैशवावस्था एवं प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अनुभवों पर बहुत अधिक जोर डाला गया है। ये अनुभव अपनी परिस्थितियों में एक निश्चित ढ़ंग से प्रतिक्रिया करने, ग्रहण करने एवं महसूस करने में सुग्राही बनाते हैं। इस मत के अनुसार इन स्मृतियों एवं इनसे सम्बद्ध संवेगों को जानकारी में लाकर एवं चेतन आत्म के साथ इनके एकीकरण से परिवर्तन लाया जा सकता है।

व्यवहारवादी मत– अतीत में सीखे हुए अनुभवों के द्वारा व्यवहार की व्याख्या की कोशिश करता है। व्यक्ति के रंगपटल पर पहले से ही विद्यमान प्राचीन अनुबन्धन या विशेष प्रतिक्रिया के साहचर्य के स्वायत्त प्रतिक्रिया के द्वारा अधिगम होता है। एक अन्य प्रकार का अधिगम क्रिया प्रसूत अनुबंधन के द्वारा होता है जिसका अर्थ है कि एक प्रतिक्रिया जिसे सकारात्मक प्रबलन लाने के लिए पर्यावरण में संचालित किया जाता है, सीखी जाती है। इस प्रकार उनके अनुसार सभी व्यवहार सीखे जाते हैं एवं परिवर्तन लाया जा सकता है। यह वर्तमान अस्तित्व के व्यवहार को भूलकर एवं इच्छित व्यवहार को पुन: सीखकर तथा सीखे जाने वाले व्यवहार को पुरस्कृत करके एवं भूलने वाले व्यवहार को दण्डित करके किया जा सकता है।

संज्ञानात्मक मत मानता है कि यह हमारी संज्ञानात्मक रुपरेखा जो हमारे मूल्य, अभिवृत्ति, विश्वास, मत एवं विचारधारा हैं, यह हमारे दृष्टिकोण एवं व्यवहार को निर्धारित करते हैं। दूसरे शब्दों में, हम अपने अनुभवों की एक विशेष ढ़ंग से व्याख्या करना सीख चुके हैं और सीखी हुई इन शैलियों को अभिवृत्ति, विश्वास आदि के रुप में जाना जाता है। हमारे दृष्टिकोण एवं व्यवहार में फेरबदल करने के लिए इन संज्ञानात्मक रुपरेखाओं को परिवर्तित करने की आवश्यकता है।

मानवतावादी एवं अस्तित्वपरक मत पहचान के महत्व पर प्रकाश डालते हैं कि सभी व्यक्ति अपने जीवन की दिशा एवं कार्य के मार्ग को चुनने के लिए स्वतंत्र हैं इस तथ्य के विपरीत में कि वे अपनी परिस्थितियों के निष्क्रिय पीड़ित हैं। वे यह भी बताते हैं कि स्वतंत्रता की यह क्षमता बंधनमुक्त होती है यदि हम अपने आपसे संतुष्ट हैं जो कि अपने विषय में सकारात्मक महसूस करना एवं अन्य के विषय में नकारात्मक या निम्न भावना नहीं रखना है। उनके अनुसार यह हमारे लिए पहचानना महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक व्यक्ति का दुनिया के विषय में अपना स्वयं का दृष्टिकोण है और वह इसके अनुसार प्रतिक्रिया करता है। अनुभवों की यह व्यक्तिनिष्ठता हमें अपने दैनिक जीवन में एक-दूसरे के साथ अन्योन्यक्रिया के समय ध्यान रखना चाहिए।

उपर्युक्त सभी व्याख्याएँ अपने आपको साथ ही साथ अन्य लोगों को समझने में बहुत सहायक हैं। फिर भी, मानव व्यवहार की व्याख्या करने में इनमें से कोई भी अपने आप में पूर्ण नही हैं इसके बावजूद इनमें से प्रत्येक सत्य के एक तत्व को लाती है। नि:संदेह, हमारे विचार, भावनाएँ एवं कार्य हमारे अतीत के अनुभवों, अधिगम, संज्ञानात्मक रुपरेखा एवं आत्म-प्रतिरुप को प्रभावित करते हैं जो हम अपने विषय में रखते हैं। फिर भी, एक व्यक्ति के रुप में कुछ विस्तृत सीमाओं के अन्दर हमारे पास अपने जीवन में परिवर्तन हेतु स्वतंत्रता एवं क्षमता है। तथापि, यह तभी हो सकता है जब हमारे अपने में एक व्यापक अन्तर्दृष्टि एवं ज्ञान होता है। यह इस बात पर भी निर्भर है कि क्या हम उन तरीकों पर ध्यान देते हैं जिसमें हम अपने जीवन में विविध परिस्थितियों की माँग के अनुसार अनुकूलन करते हैं।

क्रियाकलाप-6
1. उपर्युक्त विचारों को अपने ऊपर प्रयोग कीजिए एवं आप अपने कुछ व्यवहार की व्याख्या के प्रसंग में देखिए। 2. अपने मूल्यों, विश्वासों एवं आदतों की पहचान एवं आत्म-विश्लेषण कीजिए एवं देखिए कि वे किस प्रकार आपके व्यवहार को प्रभावित कर रहे हैं।

उपर्युक्त क्रिया-कलाप आपको यह जानने में सहायता कर सकता है कि जब आप पूर्णतया चेतन अवस्था में होते हैं तब आपका व्यवहार अधिक प्रभावशाली होता है एवं आपकी आदतें भी आपके व्यवहार को यांत्रिक रुप से नही संचालित करती बल्कि आप अपनी आदत या विश्वास के अनुसार कार्य न करके परिस्थिति की आवश्यकता के आधार पर करते हैं।

3.9 सारांश

यह अध्याय व्यवहार के अनुकूलक तरीके की अवधारणा की व्याख्या करता है जैसे- परिस्थितियों का सामना करने के लिए अपनी योग्यता में विश्वास, लचीलापन, समस्या की तरफ वस्तुनिष्ठता से देखना जो हमारे तनावों को सँभालने में हमारी सहायता करता है एवं इसके प्रति प्रतिक्रिया में सही निर्णय लेता है, इस प्रकार यह हमारी मानसिक कुशलता में वृद्धि करता है, वहीं पर, व्यवहार के दुरनुकूलक तरीके जैसे अत्यधिक परेशानी, चिंता करना आदि हमारे लिए तनाव एवं कठिनाइयों को आगे बढ़ाते हैं।

जीवन में अनुकूलक तरीके का अभ्यास आत्मविश्वास को बढ़ाता है, हमारी तेजस्विता एवं योग्यता में वृद्धि करता है एवं अनेकों प्रकार की समस्याओं का सामना करने का साहस प्रदान करता है।

रक्षात्मक व्यवहारों का अति उपयोग जैसे अस्वीकरण, दमन एवं विस्थापन आदि अनेकों तंत्रिकातापी विकारों की तरफ ले जाते हैं।

मनोविज्ञान का शिक्षण व्यवहार में वैयक्तिक भिन्नता को समझने के लिए अनेकों व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है जिनमें– मनोगतिक, व्यवहारवादी, संज्ञानात्मक, मानवतावादी एवं अस्तित्वपरक सिद्धान्त हैं।

मनोगतिक सिद्धान्त अंत:अतीन्द्रिय बलों में विश्वास करता है, जैसे अतृप्त इच्छा, महत्वकांक्षा एवं शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था के अनुभव जो हमारे व्यक्तित्व के निर्माण-प्रक्रिया को अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

व्यवहारवादी सिद्धान्त हमारे व्यवहार के निर्माण में अधिगम पर बल देते हैं। संज्ञानात्मक सिद्धान्त हमारे संज्ञानात्मक संरचनाओं यथा– विश्वासों, अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं विचार-धारा को हमारे व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण मानते हैं। मानवतावादी एवं अस्तित्वपरक सिद्धान्त व्यक्ति की विशिष्टता एवं हमारे द्वारा लिए गए निर्णय जो हमारे स्वरुप का निर्धारण करते हैं एवं जिस रुप में हम हैं, इस पर बल देते हैं।

मानव व्यवहार को समझने में इनमें से कोई भी सिद्धान्त पृथक रुप में सम्पूर्ण नहीं है। इन सब में कुछ सच्चाई है इसलिए ये सब मिलकर हमें मानव व्यवहार के बारे में अधिक सटीक ज्ञान प्रदान करते हैं।

आत्म-मूल्यांकन अभ्यास

1. अनुकूलन एवं दुरनुकूलन के अर्थ की व्याख्या कीजिए।
2. विविध प्रकार के रक्षात्मक व्यवहारों का वर्णन कीजिए।
3. रक्षात्मक व्यवहार एवं मानसिक विकारों के बीच संबंध की व्याख्या कीजिए।
4. विभिन्न सैद्धान्तिक ढाँचों में अनुकूलक एवं दुरनुकूलक व्यवहार के विकास की कैसे व्याख्या की गई है?

आत्म-मूल्यांकन अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

1. अनुकूलन स्वस्थ या सकारात्मक चिन्तन एवं प्रतिक्रिया के तरीकों से संबंधित है जो जीवन की समस्या एवं तनावों को कम करने में सहायता करता है, जबकि दुरनुकूलक अस्वस्थ या नकारात्मक चिन्तन एवं प्रतिक्रिया के तरीकों से संबंधित है जो कि सामना की जाने वाली समस्या को कम किए बिना हमारे तनावों एवं कठिनाइयों को आगे बढ़ाता है।
2. रक्षात्मक रुप से सामना करना हमारे चिंता एवं अपराध की भावना को हटाने में सहायता करता है। यूनिट में उदाहरण के साथ दिए गए किन्हीं चार प्रकार के रक्षात्मक व्यवहारों की व्याख्या कीजिए।
3. अत्यधिक रक्षात्मक व्यवहार मानसिक विकारों के साथ जुड़ा हुआ है जैसे तंत्रिका रोगी के सभी रुपों में।
4. निम्नलिखित की व्याख्या करना है :–
   - मनोगतिक सिद्धान्त अंत:अतीन्द्रिय बलों जैसे– अतृप्त इच्छा एवं महत्वाकांक्षा तथा शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था के अनुभवों पर विश्वास करता है जो हमारे व्यक्तित्व की निर्माण-प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।
   - व्यवहारवादी मत के अनुसार, सभी व्यवहार सीखे जाते हैं। इसलिए वर्तमान अस्तित्व वाले व्यवहार को भूलकर इच्छित व्यवहारों को पुन: सीखने से परिवर्तन लाया जा सकता है।
   - संज्ञानात्मक मत के अनुसार, कोई व्यक्ति अपने व्यवहार में फेरबदल मूल्यों, अभिवृत्तियों, विश्वासों आदि में परिवर्तन लाकर कर सकता है।
   - मानवतावादी एवं अस्तित्वपरक सिद्धान्त व्यक्ति की विशिष्टता पर बल देते हैं एवं उन निर्णयों को भी जो हम लेते हैं और जिनकी वजह से हमारा वर्तमान स्वरुप निर्धारित हुआ है। उनके अनुसार सभी व्यक्तियों का दुनिया को देखने का अपना स्वयं का दृष्टिकोण है और वे उसी के अनुसार प्रतिक्रिया करते हैं।

आत्म-निरीक्षण अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-1

1. *अनुकूलक प्रतिक्रिया के कुछ उदाहरण हैं–* समस्या का सामना करने के लिए अपनी योग्यता में विश्वास रखना, अपने विचारों एवं कार्यों में लचीलापन, समस्या की तरफ अधिक वस्तुनिष्ठ एवं तार्किक ढंग से देखना।
2. *दुरनुकूलक प्रतिक्रिया के कुछ उदाहरण हैं–* अत्यधिक चिंता करना, निष्क्रियता, दोषारोपण या चिंता या दूसरों को परेशान करने के लिए नकारात्मक कार्य भी करना बजाय सकारात्मक एवं उत्पादक कार्य करने के।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-2

1. स
2. अपने आप में शांत एवं शांतिप्रिय होना, सादगी, स्वत:प्रवृत्ति, स्वाभाविकता, नए योजनाओं एवं विचारों के प्रति खुलापन, अनुभव, वास्तविकता की स्वीकृति वास्तविक पूर्वाभिमुखीकरण, वस्तुनिष्ठता आदि।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-3

1. *विस्थापन–* वह व्यक्ति जो अपने बॉस से बहुत नाराज है, घर लौटने पर अपनी पत्नी एवं बच्चे पर चिल्लाना शुरु कर देता है क्योंकि वह अपने बॉस को उत्तर नही दे सकता है।
2. *युक्तिकरण–* बच्चा अपनी परीक्षा में कम नम्बर पाने पर अपने अध्यापक पर सही ढ़ंग से न पढ़ाने का दोषारोपण करता है।
3. *प्रक्षेपण–* एक व्यक्ति अपनी पत्नी से घृणा करता है परन्तु विश्वास करता है कि उसकी पत्नी उससे घृणा करती है।
4. *प्रतिक्रिया निर्माण–* एक व्यक्ति अपनी पत्नी एवं बच्चों को नापसंद करने पर भी उनके लिए अत्यधिक प्रेम महसूस कर सकता है।
5. *अस्वीकरण–* एक पत्नी अपने पति की मृत्यु का समाचार सुनने पर यह विश्वास नही कर पाती है कि यह वास्तव में घटित हो चुका है।
6. *दमन–*एक बीमार व्यक्ति अपने दिमाग को अपनी बीमारी से हटाने के लिए वास्तव में अधिक कार्य कर सकता है।
7. *प्रतिगमन–* एक बड़े बच्चे में दूसरे बच्चे के जन्म के पश्चात् बिस्तर गीला करने की आदत पुन: प्रारम्भ हो सकती है।
8. *उदात्तीकरण–* नि:संतान दम्पत्ति एक अनाथालय के लिए कार्य कर सकते हैं।

अ. विस्थापन	ब. युक्तिकरण
स. प्रतिक्रिया निर्माण	द. दमन
क. प्रतिगमन	ख. उदात्तीकरण

पठनीय पुस्तकें

- कार्सन, आर.सी., बचर, जे.एन. एंड मिनेका, एस. 2000, एबनार्मल साइकोलॉजी एंड माडर्न लाइफ (ग्यारहवाँ संस्करण), एलिन एंड बैकन, बोस्टन।
- मैस्लो, ए.एच. 1973, सेल्फ-एक्चुअलाइजिंग एंड बियान्ड, इन जी. लिंडजी, सी.एस. हाल एंड मनोसेविट्ज (इड्स) थ्योरीज ऑफ पर्सनैलिटी : प्राइमरी सोर्स एंड रिसर्च (द्वितीय संस्करण), जॉन विले, न्यूयॉर्क।
- स्वामी दयानन्द, 1993, द टीचिंग ऑफ भगवद् गीता। विजन बुक्स, न्यू देहली।
- सैरासन, आई.जी. सैरासन, बी.आर. 2004, एबनार्मल साइकोलॉजी : द प्रॉब्लम ऑफ मलएडाप्टिव बिहेवियर (ग्यारहवाँ संस्करण), प्रेन्टिस-हाल, न्यू जर्सी।

वेबलिंक्स

http://www.mentalhealtharticles.net/mental-health/spirituality-and-mental-health.html

http://www.mentalhealtharticls.net/mental-health/mental-and-emotional-health.html

4

विकास एवं समायोजन को सुसाध्य बनाना

4.0 परिचय

4.1 उद्देश्य

4.2 विकास एवं समायोजन, पूरक प्रक्रियाओं के रुप में

4.3 विकास एवं समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक
4.3.1 आन्तरिक कारक
4.3.2 बाह्य कारक

4.4 आन्तरिक एवं बाह्य कारकों की अन्योन्यक्रिया एवं इसकी अर्थापत्ति

4.5 विकासात्मक कार्यों में कुशलता

4.6 पहचान का निर्माण करना

4.7 परामर्शदाता/अध्यापक के लिए कुछ उपयोगी रणनीतियाँ

4.8 सारांश
आत्म-मूल्यांकन अभ्यास
आत्म-मूल्यांकन अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु
आत्म-निरीक्षण अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु
पठनीय पुस्तकें

4.0 परिचय

आप पहले ही सीख चुके हैं कि विकास एक जीवन पर्यन्त एवं सतत् प्रक्रिया है जो शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक क्षेत्रों में घटित होती है। विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरती है शैशवावस्था से बाल्यावस्था, बाल्यावस्था से किशोरावस्था, किशोरावस्था से प्रौढ़ावस्था एवं हर अवस्था में उस अवस्था के कुछ विशेष कीर्तिमानों को प्राप्त करना होता है। प्रत्येक अवस्था लोगों के लिए नई चुनौतियाँ उपस्थित करती हैं और वे अपने स्वयं के तरीके एवं गति के अनुसार सामंजस्य स्थापित करके इनके प्रति प्रतिक्रिया करते है।

इस यूनिट में आप विविध प्रकार के आन्तरिक एवं बाह्य कारकों के बारे में सीखेंगे जो विकास एवं समायोजन को प्रभावित करते हैं एवं उम्र के अनुसार सही ढ़ंग से व्यवहारों का अर्जन करते हैं। आप इन कारकों के आधारभूत ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं जो एक परामर्शदाता/अध्यापक के रुप में आपके लिए महत्वपूर्ण है। बच्चों को असंख्य विकासात्मक कार्यों में निपुणतापूर्वक कार्य को पूरा करने हेतु मदद देने के लिए आप समर्थ हो सकते हैं।

अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग पूर्व-प्रवृत्ति के साथ पैदा होते हैं एवं अलग-अलग पर्यावरण में रहते हैं। इस प्रकार वे विकास एवं समायोजन का अलग-अलग स्तर अर्जित करते हैं जिसमें से सब अधिगम में सहायक नहीं हो सकता है। मानव की पूर्वप्रवृत्ति एवं पर्यावरण में अंतर्निहित कारकों के बारे में एक विद्यालयी परिस्थिति में विकास एवं समायोजन की विभिन्न माँगों के संबंध में यहाँ चर्चा की जाएगी।

4.1 उद्देश्य

इस यूनिट को पढ़ने के पश्चात् आप समर्थ होंगे–

- विकास एवं समायोजन के बीच अंत: संबंध स्पष्ट करना।
- विकास एवं समायोजन के आन्तरिक एवं बाह्य कारकों की सूची बनाना।
- आन्तरिक एवं बाह्य कारकों के बीच अन्योन्यक्रिया एवं अंत: संबंधों को समझना एवं विकास एवं समायोजन पर उनके प्रभाव के बिषय में जानना।
- विकास एवं समायोजन के लिए विकासात्मक कार्यों की अर्थापत्ति का वर्णन करना।
- समायोजन को सुसाध्य बनाने में परामर्शदाताओं एवं शिक्षकों की भूमिका स्पष्ट करना।

4.2 विकास एवं समायोजन, पूरक प्रक्रियाओं के रुप में

आप आश्चर्य करते होंगे कि कुछ विद्यार्थियों को नियंत्रित करना इतना कठिन क्यों है। यह उनके विकास एवं समायोजन प्रक्रिया की वैयक्तिक विभिन्नता के कारण हो सकता है जो परस्पर संबंध एवं पूरक तरीके से संचालित होता है। दोनों प्रक्रियाएँ व्यक्ति के जीवन में साथ-साथ कार्य करती हैं। समायोजन व्यक्तिगत आवश्यकताओं के साथ ही साथ पर्यावरण की मांगों को संतुष्ट करने के उद्देश्य पर होता है। विकास एवं समायोजन को पृथक करने के लिए कोई निश्चित रेखा नही है। दोनों प्रक्रियाएँ परिवर्तन एवं स्थायित्व के द्वारा विशेषित होती हैं। विकास के अधिक विस्तार के कारण परिवर्तन होता है। विकास कई क्षेत्रों में होता है जैसे शारीरिक, बौद्धिक, भाषा, सांवेगिक एवं सामाजिक। विकास की दर अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग हो सकती है। एक क्षेत्र में प्राप्त किया गया विकास का स्तर अन्य क्षेत्रों में भी विकास को प्रभावित करता है। जितना अधिक किसी एक क्षेत्र में विकास होता है, समायोजन के लिए उतनी अधिक क्षमता बढ़ती है। विकास के दौरान व्यक्ति केन्द्र में होता है जबकि समायोजन में व्यक्ति के पर्यावरण के साथ संबंध पर बल दिया जाता है।

विद्यालय की यह एक आवश्यक पूर्व-शर्त समझी जाती है कि बच्चे एक स्तर का विकास करें जहाँ वे आराम से घर से बाहर रह सकते हों, शौच आदि के लिए प्रशिक्षित हों, अपनी मूलभूत आवश्यकताओं जैसे भोजन करना में अपना ध्यान रख सकते हों, यह विद्यालय की आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने में उनकी मदद करेगा। बच्चों के द्वारा हासिल किया गया समायोजन बदले में उन्हें बेहतर कार्य करने एवं बेहतर सीखने के अवसरों को उपलब्ध कराकर उनके विकास को आगे बढ़ाता है। बच्चों से अपेक्षित विद्यालय के सामान्य कार्य जैसे पढ़ना, लिखना आदि के लिए आवश्यक है कि वे आँख-हाथ का समन्वयन, हाथ-चालक नियंत्रण आदि को विद्यालय की आवश्यकता को पूरा करने एवं विद्यालयी प्रसंग में सामंजस्य हेतु सक्षम होने के

लिए विकसित करें। जब बच्चे एक विशेष अवस्था में एक क्षेत्र में एक अपेक्षित स्तर तक विकास कर लेते हैं (जैसे संज्ञान) तब वे सही ढ़ंग से समायोजन स्तर प्रदर्शित करते हैं जो विकास को आगे की तरफ ले जाता है।

उच्च स्तर के विकास की उपलब्धि के कारण वे पदार्थों को अलग तरीके से देखने लगते हैं और जिसके परिणामस्वरुप पर्यावरण में निपुणता हासिल करते हैं। वे आत्म विश्वास भी अर्जित करते हैं। समग्र रुप में, जैसे जैसे विकास बढ़ता है अनुभवों को निरन्तर पुनर्संगठित करना होता है जो बेहतर समायोजन की तरफ ले जाता है। किसी परिस्थिति में बेहतर समायोजन के अपने अनुभवों पर आप चिन्तन कर सकते हैं।

क्रियाकलाप-1

अपनी कक्षा के बच्चों के विषय में सोचिए। क्या आप किसी बच्चे को याद कर सकते हैं जिसे कक्षा में आपसे या अन्य बच्चों से बातचीत के समय सही शब्दों के प्रयोग में कठिनाई होती है, लोग प्राय: उस पर हँसते हैं एवं उसको परेशान करते हैं? आप इस प्रकार के बच्चों के बारे में क्या सोचते हैं, क्या वे योग्यता में कम हैं या प्रयास में अथवा उन्हें अपनी भाषा का विकास करने के लिए अवसर नही था?

उपर्युक्त क्रिया-कलाप से अपने निष्कर्ष निकाला होगा कि एक बच्चे में खराब भाषा-विकास सामाजिक एवं सांवेगिक समस्या का भी कारण हो सकता है। अब हमें देखना है कि वे कारक क्या हैं जो विकास की दर को निर्धारित करते हैं।

4.3 विकास एवं समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक–

विकास एवं समायोजन की प्रक्रियाएँ असंख्य कारकों से प्रभावित होती हैं जिन्हें आंतरिक एवं बाह्य कारकों में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। आंतरिक कारक व्यक्ति के अंदर होते हैं जबकि बाह्य कारक बाहर के संदर्भ में होते हैं। हमें इन कारकों की विस्तृत रुप में चर्चा करना है।

4.3.1 आन्तरिक कारक

आन्तरिक कारकों में वे कारक शामिल हैं जो वंशानुक्रम में प्राप्त होते हैं जैसे शारीरिक एवं अनुवांशिक विशेषताएँ, आँखों का रंग, बाल, मानसिक अवस्था, संवेदना, चालक समन्वयन, पेशी-समूह, तेजस्विता, वाक् एवं श्रवण युक्तियाँ, ऊर्जा स्तर, चयापचयन, तंत्रिकीय प्रणाली एवं ग्रन्थि। ये कारक एक बच्चे की योग्यता, प्रयास का स्तर एवं अभिनिवेश जिसे वह विद्यालय में लगा सकता है एवं सफलता प्राप्त कर सकता है उसको प्रभावित करते हैं।

उदाहरण– रीता एक 10 वर्षीय लड़की है जो कक्षा-5 की छात्रा है। वह अच्छी तरह से भोजन करती है, कठिन शारीरिक अभ्यास में भाग लेती है, अपने विद्यालय के कार्य के लिए कठिन परिश्रम करती है एवं सफल होती है।

वे कौन से आन्तरिक कारक हैं जिन्हें आप सोचते हैं कि वे उसकी सफलता में योगदान देते हैं?

4.3.2 बाह्य कारक

आन्तरिक कारक जिनके विषय में आप पढ़ चुके हैं, उसके अलावा बाह्य कारक भी पर्यावरण में विद्यमान हैं। ये बच्चे के परिवार, विद्यालय, समुदाय एवं सांस्कृतिक प्रसंगों में जुड़े हुए हैं। पारिवारिक सदस्य, समआयु समूह, पास-पड़ोस, विद्यालय, समुदाय एवं सांस्कृतिक प्रसंग बच्चों के सोचने, समाजीकरण तथा अपने पर्यावरण में स्वयं एवं अन्य के बारे में अर्जित की जाने वाली जागरुकता को प्रभावित करते हैं। पर्यावरण बच्चों के लिए उपलब्ध अवसरों की सीमाओं को निर्धारित करता है।

उदाहरण– रानी एक गंदी बस्ती में रहती है एवं पड़ोस के विद्यालय में पढ़ने जाती है। विद्यालय के पास की नाली हमेशा ऊपर बहती रहती है एवं कूड़ा हर जगह फैला रहता है। वह लगातार छींकने एवं पेट दर्द के बारे में बताती है। वह अपनी कक्षा में अन्य बच्चों की तुलना में छोटी है। वे क्या पर्यावरणीय कारक हैं जिन्हें आप सोचते हैं कि उसके विकास को प्रभावित कर रहे हैं? पर्यावरण के कुछ कारकों का यहाँ नीचें वर्णन किया गया है।

पारिवारिक प्रभाव

आप समझते हैं कि बच्चे के विकास में परिवार सबसे महत्वपूर्ण संस्था है। परिवार प्राथमिक सामाजिक इकाई है जहाँ विकास एवं समायोजन की नींव डाली जाती है। परिवार में ही बच्चे की आधारभूत आवश्यकताएँ (भोजन, सुरक्षा, देखभाल आदि) पूरी होती हैं। परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर देखभाल एवं सहायता प्रदान करने की सीमा तय करता है। ये बच्चे में सुरक्षा की भावना एवं आत्म-सम्मान के निर्माण में काफी हद तक उत्तरदायी होते हैं। बच्चा विकास एवं समायोजन के लिए आवश्यक अवसर एवं पहलू परिवार में पाता है। बच्चा परिवार में माता-पिता, भाई, बहन एवं अन्य के साथ अन्योन्यक्रिया प्रारम्भ करके सीखता है। गर्मजोशी, प्रेम, स्वीकृति, अस्वीकरण आदि अभिभावकों की शैली बच्चे के विकास एवं समायोजन में अलग-अलग प्रकार से प्रभाव डालती है। बच्चे को प्रेमपूर्वक स्वीकार करने वाले माता-पिता उनके मन में स्वस्थ सामाजिक-सांवेगिक विकास एवं संबंधों के प्रति संतुष्टि का विकास हैं। वे माता-पिता जो अपने बच्चों को प्राय: उपेक्षित करते हैं वे बच्चे में विद्वेष, क्रोध, उदासीनता एवं निष्क्रियता उत्पन्न कर सकते हैं। माता-पिता के व्यवहार के अलावा

परिवार का सम्पूर्ण सांवेगिक वातावरण विकास एवं समायोजन के लिए नींव डालता है। पारिवारिक वातावरण परिवार के सदस्यों (माता-पिता, भाई-बहन एवं परिवार के अन्य सदस्य) के बीच अंतर्वैयक्तिक संबंधों के गुणवत्ता का परिणाम होता है।

उदाहरण– जॉन 12 वर्ष का है एवं कक्षा-5 में पढ़ता है। वह अपने माता-पिता को पसंद करता है क्योंकि वे उसे किसी चीज के लिए इनकार नहीं करते हैं, डाँटते, मार्गदर्शन या आदेश नही देते हैं। आपके विचार में, क्या उसके माता-पिता सही अभिभावकीय शैली का प्रयोग कर रहे हैं?

हाँ ———— नहीं ———— .

आप ऐसा क्यों सोचते हो?

बच्चे के व्यवहार के लिए एक सीमा निर्धारित न करना उसे परिपक्व व्यवहार को अपनाने के योग्य नही बनाता है।

विद्यालयी प्रभाव

परिवार के पश्चात्, सभी समाजों में विद्यालय बच्चे के जीवन में मुख्य स्थान ग्रहण करने के लिए आ जाता है। एक सामाजिक इकाई के रुप में विद्यालय बच्चे के विकास एवं समायोजन को प्रभावित करता है क्योंकि वे अपने दिन के समय के काफी घंटे वहाँ बिताते हैं। विद्यालय में बच्चे अपने अन्योन्यक्रिया कौशलों को शिक्षकों एवं सहपाठियों के साथ प्रयोग करने की चुनौती का सामना करते हैं। विद्यालय में अपने अनुभव के आधार पर वे सामाजिक रुप से स्वीकृति व्यवहार के बारे में विचार विकसित करते हैं। विद्यालय से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं- विद्यालय एवं कक्षा का वातावरण, अध्यापकों का रुझान एवं व्यवहार, शिक्षण सामग्री (विशेषरुप से सहायक एवं प्रोत्साहन), अनुशासनीय आदतें एवं सहपाठियों के साथ अन्योन्यक्रिया।

विद्यालय का वातावरण शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रियाओं के लिए सम्पूर्ण भाव तैयार करता है एवं अध्यापकों एवं छात्रों के बीच अंतर्वैयक्तिक संबंधों को स्थापित करता है। उन्मुक्त वातावरण देने वाले विद्यालय में बच्चे अधिकारियों के लिए उत्तरदायित्व एवं सम्मान में कमी कर सकते हैं एवं आत्मकेन्द्रित हो जाते हैं। एक अधिकारवादी अनुशासन के अन्तर्गत, बच्चे घबराहट, नाराजगी के चिन्ह दिखा सकते हैं, तनाव में हो सकते हैं एवं यहाँ तक कि विद्रोही भी हो सकते हैं। प्रजातंत्रीय अनुशासन में, बच्चे अपने कार्य के प्रयास, आत्म-सम्मान के विकास में प्रोत्साहित महसूस करते हैं एवं प्रसन्न तथा ठीक प्रकार से समायोजित होते हैं। जब एक अध्यापक सकारात्मक एवं कक्षा में खुला होता है तब बच्चे पढ़ने के लिए प्रेरित होते हैं, शांत रहते हैं एवं सफल होते हैं।

पाठ्यक्रम एवं अध्यापक विद्यालय में अन्य महत्वपूर्ण कारक हैं। पाठ्यक्रम विषय वस्तु एवं अध्यापक कक्षाकक्ष में इसको किस प्रकार प्रस्तुत करता है यह स्पष्ट रुप से बच्चों के चिन्तन को आकार देता है। विषय-वस्तु में लचीलापन एवं पाठ्यक्रम का सम्पादन अलग-अलग सीखने वालों को विद्यालय की आवश्यकताओं का सामना करने एवं अपनी क्षमताओं के आधार पर विभिन्न स्तरों तक पहुँचने के योग्य बनाता है।

उदाहरण– लारा एक पर्वतीय क्षेत्र में रहती है एवं एक कुशल पर्वतारोही है, प्राकृतिक सुन्दरता से प्रेम करती है एवं पास-पड़ोस के पौधों एवं जड़ी-बूटी के बारे में जानती है। वह कथा-साहित्य पढ़ना पसंद करती है लेकिन विज्ञान की कक्षा में खिड़की से बाहर की तरफ देखती हैं जब अध्यापक अन्यमनस्कता के लिए उसको डाँटते हैं तब अन्य बच्चे उस पर हँसते हैं।

आप क्यों सोचते हैं कि लारा असावधान है? लारा का उदाहरण स्पष्ट करता है कि वह उस विषय में रुचि नही लेती है जब उसे परंपरागत एवं नीरस ढ़ंग से पढ़ाया जाता है। बच्चे की अभिरुचि उत्पन्न करने के क्रम में अध्यापक को नवीन शिक्षण प्रणाली के प्रयोग की कोशिश करना होता है जो वास्तविक जीवन के करीब होता हैं। अध्यापक की बच्चों के साथ अन्योन्यक्रिया एवं सम्बंध उनके स्वयं के व्यक्तित्व प्ररुप, अभिवृत्ति, विश्वास एवं मूल्यों, सामाजिक पक्षपात तथा पूर्वाग्रह को व्यक्त करता है जो विभिन्न सामाजिक समूहों एवं सीखने वालों के प्रति होता है। अध्यापकों को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि शिक्षण-अधिगम कार्य एवं प्रक्रियाएँ बच्चों को एक सद्भावपूर्ण एवं रचनात्मक कक्षा कक्ष वातावरण में अपनी ताकत को संघटित करना है एवं अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त करना है।

*उदाहरण–*एक विद्यालय के प्रधानाचार्य विद्यालय की सभा में भाषण देते हैं एवं कहते हैं कि अध्यापकों एवं छात्रों को एक-दूसरे के साथ आपसी सहयोग, पक्षपातरहित एवं मिल-जुलकर रहने की आवश्यकता है। अपने ऑफिस में वे अध्यापकों को आदेश देते हैं। असुविधा-समूहों के बच्चों को लम्बे समय तक इन्तजार करना पड़ता है एवं उनके साथ उदासीनता दिखाई जाती है।

आप विद्यालय वातावरण, अध्यापक-छात्र अन्योन्यक्रिया एवं विद्यालय के अधिकारीगण के विषय में क्या सोचते हैं?

विद्यालय बहुत से तरीकों के द्वारा बच्चों के विकास एवं समायोजन को प्रभावित करता है। विद्यालय के अन्दर मित्र-समूह एक महत्वपूर्ण प्रभाव है। मित्र समूह के प्रभाव की नीचे चर्चा की गई है।

समकक्षी प्रभाव

याद कीजिए कि किस प्रकार से आपके मित्र एवं सहपाठी आपको एवं आपके जीवन को प्रभावित करते हैं। धीरे-धीरे एक व्यक्ति घर से बाहर आता है एवं खेल क्रिया-कलापों के लिए अपने उम्र के साथियों के साथ अपने क्षितिज का विस्तार करता है। समकक्षी समूह सामाजिक रुझानों एवं व्यवहार के तरीकों में परिवर्तन लाकर विकास को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। ये सामाजिक रुझान किसी को समाज में समायोजन निर्धारित करने में लम्बे समय तक रहते हैं। जैसे जैसे व्यक्ति बढ़ता जाता है, समकक्ष समूह का दबाव विकास एवं समायोजन में जुड़ जाता है जो सामाजिक रुप से सहमति प्राप्त व्यवहार को सीखने में सहायक होता है। उसी समय समकक्षी समूह अधिक चुनौतियों को प्रस्तुत करते हैं एवं समायोजन में संभावित खतरा उत्पन्न करते हैं।

यदि मित्रों के साथ संबंध मधुर हैं तब एक व्यक्ति सामाजिक संबंधों का आनन्द उठाता है एवं इसे जारी रखना चाहता हैं। यदि दूसरी तरफ, ये रिश्ते परेशान करने वाले या भय पैदा करने वाले हैं, तब बच्चे उनकी उपेक्षा करेंगे एवं दुरनुकूलक व्यवहार कर सकते हैं। किशोरावस्था में, मित्रों का प्रभाव सामाजिक अन्योन्यक्रिया एवं भविष्य की योजनाओं के निर्धारण में विशेष रुप से महत्वपूर्ण हो जाता है। किशारों के लिए समाजीकरण के रुप में मित्र प्राय: परिवार के प्रभाव को बदलते हैं।

इस प्रकार मित्रों का प्रभाव एक महत्वपूर्ण कारक है जो बच्चों के सामाजिक एवं सांवेगिक विकास को प्रभावित करता है। अन्य कारक जिससे आप शायद परिचित न हों, वह समुदाय है जो विकास एवं समायोजन को प्रभावित करता है।

समुदाय कारक

पास-पड़ोस की प्रकृति (इसका सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं रुझान), सामान्य उपयोग के स्थानों की उपलब्धता जैसे खेल के मैदान, पार्क, शॉपिंग काम्प्लेक्स, जन-कल्याण संस्थाएँ एवं मीडिया की सुविधाएँ विकास एवं समायोजन को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कहाँ, कब एवं किस प्रकार एक पास-पड़ोस के निवासी आपस में अन्योन्यक्रिया करते हैं? अंत: संबंध समुदाय के सदस्यों में विकास एवं समायोजन को आगे बढ़ाते हैं। यह सामूहिक कुशलता एवं अपनेपन की भावना को बढ़ाते हैं।

उदाहरण– अंकित 13 वर्ष का है तथा एक प्राइवेट विद्यालय में पढ़ रहा है। वह एक अच्छी मध्यमवर्गीय कॉलोनी में रहता है और अपनी उम्र के बच्चों से मिलना पसंद करता है चाहे वे दूसरे विद्यालयों के ही हों। बहुत सी माताएँ अपने बच्चों को केवल अपने सहपाठियों के साथ खेलने के लिए प्रोत्साहित करती हैं एवं सामाजिक-आर्थिक रुप से निम्न विद्यालय के बच्चों के साथ अन्योन्यक्रिया के लिए हतोत्साहित करती हैं।

क्या आप अन्य तरीकों के बारे में सोच सकते हैं जिसमें माता-पिता एवं परिवार समुदाय में सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव डालते हैं? आप अनेक कारकों की सूची बनाने में सक्षम होंगे। एक अन्य महत्वपूर्ण कारक प्रौद्योगिकी एवं मीडिया है जो बच्चों के विकास एवं समायोजन को प्रभावित करता है। अब हम प्रौद्योगिकी एवं मास मीडिया के प्रभावों को देखते हैं।

प्रौद्योगिकी/मास मीडिया

व्यक्तिगत कम्प्यूटर्स, रेडियो, सेलफोन्स, टेलीविजन, इन्टरनेट आदि प्रौद्योगिकी के कुछ उदाहरण हैं जो आपके छात्रों पर गहरा प्रभाव डालते हैं। ये गेजेट (उपकरण) अध्यापकों एवं छात्रों दोनों के दैनिक जीवन का काफी हिस्सा खर्च करते हैं। अध्यापकों के लिए, एक नई भूमिका आई है जहाँ उन्हें मीडिया के उन प्रभावों को व्यर्थ कर देना जरुरी होता है जो बच्चों के विचारों पर प्रभाव डालते हैं। बहुत बार मीडिया में जो कुछ बताया जाता है वह वास्तविकता से बहुत भिन्न होता है। प्राय: इसके द्वारा जो कुछ श्रोताओं को प्रस्तुत किया जाता है उसके अविवेकपूर्ण स्वीकृति के लिए यह प्रोत्साहित करता है। अध्यापकों को बहस को सुसाध्य बनाना चाहिए जिससे बच्चे प्राप्त करने वाली सूचना को आलोचनात्मक ढ़ंग से देखने का अवसर प्राप्त कर सकें। हमारे द्वारा मास मीडिया पर व्यतीत करने वाले समय के कारण जो कुछ हम सीखते हैं उसको लगातार प्रबलन मिलता है। मीडिया में जिस प्रकार से घटनाओं का वर्णन किया जाता है उस पर बहुत अधिक निर्भर होता है। यद्यपि टेलीविजन एवं अन्य मीडिया प्रकारों से बहुत नुकसान है परन्तु इनसे बहुत फायदा भी है। टेलीविजन बच्चों को कई विषयों एवं क्षेत्रों के बारे में जानकारी देता है। यह उससे बहुत ज्यादा है जितना आपके माता-पिता अथवा शिक्षकों ने संभवत: अपने समय में जानकारी प्राप्त किया होगा। बच्चे टेलीविजन से सीखते हैं। मास मीडिया के विभिन्न साधनों का हमारे जीवन पर आवश्यकता से अधिक प्रभाव अच्छी तरह से जाना जाता है। इसमें घर एवं विद्यालय में भी बच्चों के जीवन पर प्रभाव पड़ता है। यह बच्चों के क्रिया-कलापों एवं दिनचर्या को बहुत तरीकों से प्रभावित करता है। इसका बच्चों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन पर प्रभाव सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है।

क्रियाकलाप-2

बच्चों को लगातार 5 दिनों तक आधे घंटे टेलीविजन कार्यक्रम देखने दीजिए। उन पहलुओं की पहचान कीजिए जिस पर देखने वालों का सकारात्मक/नकारात्मक प्रभाव होगा। अपनी कक्षा के बच्चों से चर्चा कीजिए कि टेलीविजन किस तरह उन पर सकारात्मक एवं नकारात्मक रुप से प्रभाव डालता है और उसकी एक सूची बनाइए।

अब तक आप कुछ आन्तरिक कारकों एवं बाह्य कारकों को देख चुके हैं जो विकास एवं समायोजन को प्रभावित करते हैं। अब आप यह पता लगायेंगे कि ये दोनों कारक किस प्रकार अन्योन्यक्रिया करते हैं।

4.4 आन्तरिक एवं बाह्य कारकों की अन्योन्यक्रिया एवं इसकी अर्थापत्ति

आन्तरिक एवं बाह्य कारक संयुक्त प्रभाव डालते हैं। जब आन्तरिक कारकों जैसे एक कमजोर शारीरिक गठन अथवा खराब मानसिक अवस्था को कमजोर पारिवारिक वातावरण एवं विद्यालय के सख्त वातावरण का सहयोग मिलता है तब इसका समग्र प्रभाव बच्चे के विकास एवं व्यक्तित्व को सुनिश्चित कर सकता है।

आप देख सकते हैं कि एक बच्चा जिसका स्वास्थ्य अच्छा है एवं विद्यालय तथा पास-पड़ोस में खेल की अच्छी सुविधाएँ हैं उसके विद्यालय स्तर पर खेलों में अग्रगण्य होने की अच्छी संभावनाएँ हैं और वह आगे अन्तर्विद्यालय, जिला एवं राज्य स्तर तक जाता है। बच्चे अपने स्वास्थ्य, जीवन के दृष्टिकोण एवं कैरियर चुनाव के उपागम में बहुत से प्रभावों के साथ बड़े होते हैं। कुछ परिस्थितियों के आगे हार मान लेते हैं जबकि अन्य उस परिस्थिति को एक चुनौती के रुप में देखते हैं जिस पर विजय पाना होता है। यह आपको समझना महत्वपूर्ण है कि आन्तरिक एवं बाह्य कारक विकास एवं समायोजन को सुनिश्चित करने के लिए अन्योन्यक्रिया करते हैं एवं बच्चों को समायोजन में सहायता करते समय उसको प्रयोग में लाते हैं।

हमें आन्तरिक एवं बाह्य कारकों के अन्योन्यक्रिया की अर्थापत्ति को देखना है। आपको प्रभावशाली तरीके से शिक्षण कार्य के लिए आन्तरिक एवं बाह्य कारकों के अन्योन्यक्रिया की अर्थापत्ति को जानने की आवश्यकता होगी।

विकास एवं समायोजन में अन्तर निम्नलिखित कारणों की वजह से घटित होता है:-

(i) बच्चे विभिन्न पूर्व प्रवृत्तियों के साथ पैदा होते हैं और अध्यापक के लिए यह उपयुक्त नही है कि वह सभी से एक समान स्तर के प्रदर्शन की उम्मीद करें।

(ii) जैसा कि बच्चों में विकास के विभिन्न तरीके होते हैं, एक ही प्रकार का पर्यावरण अलग-अलग परिणाम ला सकता है।

(iii) बच्चे अलग-अलग अवस्थाओं में परिपक्वन की पराकाष्ठा प्राप्त करते हैं।

(iv) कुछ समस्याएँ जैसे भाषा विकास अथवा अवधान में समय के साथ अपने आप सुधार हो जाता है।

(v) प्रोत्साहन, सहयोग एवं उद्दीपन विशेषरुप से जीवन की प्रारंभिक अवस्था में आवश्यक हैं।

(vi) निवेश का समय एवं अनुभव विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

(vii) उदाहरणार्थ, यदि माता-पिता/अध्यापक बच्चों को अधिगम के लिए दबाव डालते हैं तो बहुत कम उन्नति होती है जब तक कि बच्चे विकासात्मक रुप से तैयार न हों।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-1

1. व्यक्ति अपने विकास एवं समायोजन में एक-दूसरे से भिन्न क्यों होते हैं?
2. समायोजन के लिए उत्तरदाई वंशागत कारक क्या हैं?
3. व्यक्ति के बाह्य कारक क्या हैं जो उसके समायोजन एवं विकास को प्रभावित करते हैं?

अब तक आपको विकास एवं समायोजन प्रक्रियाओं की कुछ समझ हो चुकी है। विभिन्न अवस्थाओं पर एक बच्चे के लिए अपेक्षित विकास को विकासात्मक कार्य कहा जाता हैं। बच्चों के द्वारा इन कार्यों में सफलतापूर्वक निपुणता प्राप्त करना है। विकासात्मक कार्यों की नीचे चर्चा की गई हैं।

4.5 विकासात्मक कार्यों में कुशलता

एक विकासात्मक कार्य व्यवहार का एक समूह है जिसे जीवन की एक निश्चित अवधि में सही प्रकार से करना आवश्यक होता है। एक उपयुक्त समय पर एक विकासात्मक कार्य का अधिगम आने वाले कार्यों को आसानी से सीखने योग्य बनाता है। उदाहरणार्थ, एक बार जब बच्चा बैठना सीख लेता है, तब वह चलना एवं दौड़ना सीखने के लिए तैयार होता/होती है। केवल तब, जब सही समय होता है, उस समय एक विशेष कार्य सीखना संभव होता है। इसे ''शिक्षणीय क्षण'' कहते हैं। यह दिमाग में रखना महत्वपूर्ण है कि जब तक सही समय नही है, बच्चा उस कार्य के अधिगम में सफल नही होगा।

कुछ कार्य शारीरिक परिपक्वता के कारण पूरे होते हैं (जैसे चलने का अधिगम), जबकि अन्य समाज के सांस्कृतिक दबाव के कारण सीखे जाते हैं (जैसे पढ़ने का अधिगम)। कुछ अन्य कार्य व्यक्तिगत मूल्यों एवं व्यक्ति की प्रेरणा के कारण किया जाता है जैसे एक डॉक्टर या डांसर बनना। एक कार्य की सफलतापूर्वक निपुणता बाद के कार्यों में प्रसन्नता एवं सफलता की तरफ ले जाती है। कार्य की निपुणता में असफलता बाद के कार्यों में अप्रसन्नता की भावना, समाज की असहमति एवं कठिनाई उत्पन्न करती है। आप अपने अनुभव से स्मरण कर सकते हैं कि केवल तब, जब आपने खेलने का कौशल विकसित किया था तब आपको समकक्षी समूह में खेल क्रिया-कलापों में शामिल किया गया था।

कुछ स्पष्ट रुप से निश्चित महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्य हैं जिसे प्रत्येक संस्कृति में अपने बच्चों के निपुण होने की अपेक्षा की जाती है (कुछ निश्चित आवश्यक कौशलों को अर्जित करके)। यह उन्हें अपने जीवन के अनेकों अवस्थाओं में अर्जित करना होता है।

एक शिक्षक/परामर्शदाता के रुप में यह जानना आपके लिए लाभदायक होगा कि ये विकासात्मक कार्य क्या हैं? विशेषरुप से शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर क्या सही है?

शैशवावस्था एवं प्रारंभिक बाल्यावस्था	मध्य बाल्यावस्था	किशोरावस्था
• चलने का अधिगम • ठोस भोजन लेने का अधिगम • बात करने का अधिगम • शरीर के अपशिष्टों को निकालने में नियंत्रण का अधिगम • लिंग-भेद एवं लैंगिक विनम्रता का अधिगम • सामाजिक एवं सांस्कृतिक वास्तविकता के वर्णन के लिए सम्प्रत्यय एवं भाषा अर्जित करना • पढ़ने के लिए तैयारी • सही एवं गलत में अन्तर पहचानना सीखना एवं अन्त:करण विकसित करना	• शारीरिक कौशलों का अधिगम जो सामान्य खेलों के लिए आवश्यक है। • स्वयं की तरफ युक्तिसंगत अभिवृत्ति का निर्माण • हम उम्र साथियों के साथ चलने का अधिगम • एक सही लिंग भूमिका का अधिगम • पढ़ने, लिखने एवं परिकलन में मूलभूत कौशलों का विकास करना • दैनिक जीवन के लिए आवश्यक सम्प्रत्ययों का विकास • अन्त:करण, नैतिकता एवं मूल्यों का मापदण्ड विकसित करना • व्यक्तिगत स्वतंत्रता अर्जित करना • समाज के प्रति स्वीकृत योग्य अभिवृत्ति विकसित करना	• अपने एवं विपरीत लिंग के साथ सही संबंध उपार्जित करना • पुरुष सदृश/नारी सदृश सामाजिक भूमिका उपार्जित करना • स्वयं को स्वीकार करना • वयस्कों से सांवेगिक स्वतंत्रता हासिल करना • वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन के लिए तैयार होना • कॅरियर के लिए तैयारी • व्यवहार को निर्देशित करने के लिए नीतिपरक मूल्यों को अर्जित करना • सामाजिक रुप से जिम्मेदार व्यवहार की इच्छा करना एवं अर्जित करना।

इस वर्णन से आप विभिन्न अवस्थाओं में निपुणता प्राप्त करने वाले कार्यों के विषय में समझ चुके होंगे। अब किशोरावस्था के दौरान किसी एक विशेष कार्य को लीजिए एवं पूरा करने वाले कार्यों की सूची बनाइए। आप यह देखेंगे कि इनमें से प्रत्येक कार्य छोटे-छोटे घटकों में विभक्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ ''सामाजिक रुप में जिम्मेदार व्यवहार की इच्छा करना एवं हासिल करना'' जो कि उपर्युक्त तालिका में दिया गया है। यह कार्य तभी पूरा हो सकता है जब लड़का/लड़की (i) सामाजिक जिम्मेदारी को

समझते हैं, (ii) अन्य लोगों की तरफ स्वस्थ रुझान है, (iii) अन्य लोगों के साथ स्वस्थ अन्योन्यक्रिया करते हैं और (iv) समूह के मूल्यों के प्रति सम्मान रखते हैं।

क्रियाकलाप-3
ऊपर वर्णित लाइनों के साथ कृपया किशोरावस्था के दौरान ''एक कॅरियर के तैयारी'' करने का कार्य लीजिए एवं पाँच घटकों को लिखिए जिसमें निपुणता की आवश्यकता है।

अब तक आप समझ चुके होंगे कि विकास की विभिन्न अवस्थाओं के विकासात्मक कार्यों की निपुणता विकास एवं समायोजन प्रक्रियाओं का मूल सिद्धान्त है। एक किशोर जिसने कॅरियर के लिए तैयारी के कार्य में निपुणता हासिल कर लिया है, वह एक यर्थावादी कॅरियर के चुनाव के लिए पूरी तरह से सुसज्जित है।

विकासात्मक कार्यों में निपुणता प्राप्त करने में असफलता के गंभीर परिणाम हो सकते हैं। सबसे पहले यह बच्चों में निम्न भावना पैदा करता है जो उसे अप्रसन्न्ता की तरफ ले जाता है। दूसरा, यह सामाजिक असहमति में परिणित होता है एवं प्राय: सामाजिक बहिष्करण साथ लाता है। अन्त में, यह नए विकासात्मक कार्यों में निपुणता प्राप्त करने को और अधिक कठिन बनाता है। प्रत्येक वर्ष बच्चा पीछे रहेगा एवं उसका इस प्रकार पिछड़ना संचित हो सकता है। तुलनात्मक रुप से वे बच्चे जो विकासात्मक कार्यों को जल्दी एवं सही प्रकार से करने में कुशल हो जाते हैं, वे सामाजिक सहमति के द्वारा पुरस्कृत होते हैं जो उन्हें आत्म-सहमति एवं इस प्रकार प्रसन्नता की तरफ भी ले जाता है।

विकास को एक युवा व्यक्ति की क्षमता को मूर्त रुप देकर उपलब्धि के लिए संघटित किया जाता है। यह पहचान का एक अंश है जिसे वे अपने जीवन में अन्ततोगत्वा लेते हैं।

4.6 पहचान का निर्माण करना

आप जानते हैं कि एक सकारात्मक पहचान पाने का प्रयास करना प्राथमिक अवस्था से लेकर विद्यालय छोड़ने की अवस्था तक छात्रों का सबसे महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्य है। यह प्राय: कॉलेज तक रहता है। क्या आप जानते हैं कि पहचान क्या है? नीचे के भाग में आप ''पहचान'' के विषय में पढ़ेंगे। जैसा कि बच्चा प्राथमिक स्कूल के द्वारा आगे बढ़ता है, वह निरन्तर बढ़ते हुए सामाजिक माँगों, परिपक्व व्यवहार की अपेक्षाओं का सामना करता/करती है। वे स्वतंत्रता भी प्राप्त करना चाहते हैं। वे पहले चर्चा किए जा चुके आन्तरिक एवं बाह्य कारकों से प्रभावित होते हैं। अपने फैलते हुए सामाजिक विश्व का सामना करने के क्रम में वे नए सामाजिक कौशलों को खोजते हैं, बढ़ाते एवं सीखते हैं और जिन्हें पहले से ही सीख चुके हैं उनकी परिशुद्धि करते हैं। आत्म-सम्प्रत्यय परिवार के अलावा मित्रों, समकक्षों, अध्यापकों एवं अन्य जो उनकी

औपचारिक या अनौपचारिक रुप से सहायता करते हैं उनके साथ विस्तृत हो जाता है। वे सामाजिक संबंधों के नियम एवं आत्म-सम्मान बढ़ाने के तरीके सीखते रहते हैं। ये संघटक पहचान के निर्माण में सहयोग देते हैं। स्वतंत्रता के लिए आवेश उनमें विभिन्न प्रकार के व्यवहार को चुनने, आजमाने एवं अलग करने की आवश्यकता लाता है एवं यह प्रक्रिया चलती रहती है। स्वभाव में झल्लाहट, मानसिक अवस्था में उतार-चढ़ाव, लड़ाई, खण्डन करना आदि सभी पहचान विकसित करने की प्रक्रिया के भाग हैं। वे समूह के साथ-साथ चलने के लिए उससे संबंधित कौशलों को सीखते हैं जैसे लेन-देन की योग्यता, समूह के कार्यक्रमों में भाग लेना, कुछ सामंजस्य एवं अनुमानित व्यवहार की योग्यता प्राप्त करना, गोपनीयता कायम रखना, समकक्ष प्रसंग में आवश्यकताओं से संतोष करना एवं उपयुक्त लिंग भूमिका अपनाना। वे प्रश्नों के उत्तर देना, सूचना को संकलित एवं मूल्यांकित करना भी सीखते हैं।

आपको याद रखना है कि व्यक्तिगत पहचान का अर्थ है ''अपने'' एवं ''अन्य'' के बीच संबंध के आधार पर अपने आप को जानना। व्यक्तिगत पहचान के निर्माण खण्ड हैं–सामर्थ्य, सकारात्मक आत्म-सम्मान एवं अखण्डता। जैसे जैसे बच्चे समय क्रम में बढ़ते एवं विकसित होते हैं, यदि वे आक्रांत होते हैं तब उनकी पहचान भी वैसी होती है। समकक्षी समूह महत्वपूर्ण है क्योंकि उस प्रसंग के अन्दर कोई अपने बारे में जानता है और अन्तर्दृष्टि प्राप्त करता है कि क्या अपेक्षित एवं उपेक्षित है। पहचान का एक छोटा सा खण्ड इस अन्तर्दृष्टि से निकलता है एवं समूह का किसी के द्वारा मूल्यांकन करने की इस प्रक्रिया में व्यक्तिगत पहचान के दो महत्वपूर्ण घटक उभरते है: (i) व्यक्ति का महत्व और (ii) समूह का एक-दूसरे के लिए महत्व।

आपको पहचान विरचन के अन्य पहलू के विषय में जानना है जिसे 'सामाजिक पहचान' कहा जाता है जैसे कि एक व्यक्ति स्वयं से परे सामाजिक समूह का भी प्रतिनिधित्व करता है जिससे वह संबंधित होता है। उदाहरणार्थ, एक मानवजातीय समूह, धर्म, जन, जाति और लिंग भी। सामाजिक पहचान व्यक्ति के आत्म-सम्प्रत्यय का एक अंश है जो उससे संबंधित सामाजिक समूह की सदस्यता साथ ही सदस्यता से जुड़े हुए मूल्य एवं सांवेगिक अभिप्राय के रुप में आता है। अनेकों समूह की सदस्यता किसी की सामाजिक पहचान को सुनिश्चित करती है क्योंकि ये सभी सामाजिक अपेक्षाओं, नियमों एवं व्यवहार में संदर्भ बिंदु के रुप में रहती हैं। पास-पड़ोस, समुदाय एवं विद्यालय विभिन्न सामाजिक समूहों के व्यक्तियों को एक साथ लाते हैं एवं स्वीकार करने से लेकर बहिष्कार करने तक सामाजिक वातावरण उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। एक सकारात्मक सामाजिक पहचान निर्माण को एक सामाजिक वातावरण की आवश्यकता होगी जो एक-दूसरे के साथ संबंध में सहजता की भावना एवं सामाजिक सदस्यता की भावना का पोषण करेगा तथा इस प्रकार सशक्तीकरण आएगा।

कई सामाजिक पक्षपात, पूर्वाग्रह, विभेदीकरण एवं कलह की जड़ें यहीं से शुरु होती हैं एवं इसको सावधानीपूर्वक सम्बोधित करना आवश्यक है।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-2
1. पहचान क्या है?

4.7 एक परामर्शदाता/अध्यापक के लिए उपयोगी योजनाएँ

आप विकास एवं समायोजन की प्रक्रियाओं के बारे में पढ़ चुके हैं। अब हमें समझना है कि एक परामर्शदाता/शिक्षक की अपनी भूमिका में आप क्या सहायता प्रस्तुत कर सकते हैं। याद रखिए कि परामर्शदाता समस्या के समाधान हेतु केवल कुछ चीजें कर सकता है, सब कुछ करना संभव नहीं है। छात्रों का प्रभावपूर्ण ढंग से सामना करने के लिए आपको क्या समर्थ बनाएगा?

- पाँचों इन्द्रियों के उपयोग के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराना जैसे देखना एवं सुनना। घर पर देखिए कि बच्चे के पास इन्द्रियों के विकास को आगे बढ़ाने के लिए निरीक्षण, प्रयोग, कोशिश आदि के लिए काफी मात्रा में अवसर है ताकि विकास एवं अधिगम हो सके। पर्याप्त रुप से सुरक्षित एक पर्यावरण सुनिश्चित कीजिए जिसमें अन्वेषण के समय दुर्घटना न हो पाए। इस प्रकार के पर्यावरण में बच्चा अपने आप अपने आस-पास रहने वाले वयस्कों में विश्वास विकसित करता है एवं बेहतर ढंग से बढ़ता है।
- जब वयस्क उसको कार्य करने की अनुमति देते हैं, वह महसूस करता/करती है कि वे उसकी योग्यताओं के प्रति आश्वस्त हैं। वयस्कों पर विश्वास करने से समायोजन अपने आप सरल हो जाता है और आगे चलकर विकास भी होता है।
- वयस्कों को यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि वे बच्चे से क्या अपेक्षा करते हैं एवं क्या वादा करते हैं। स्पष्ट/उपयुक्त सीमाएँ एवं व्यवहार के दिशानिर्देशों को तय करना बच्चे को यह समझने के योग्य बनाता है कि क्या किया जा सकता है। अनुशासन/सलाह के लिए आवश्यकता बहुत कम हो जाती है।
- बच्चों को वैयक्तिक एवं समूह स्तर पर पहल करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होती है क्योंकि यह उन्हें सम्प्रत्ययों को सीखने एवं अपने चारों तरफ की वस्तुओं के बारे में विचार बनाने में सहायता करता है। यह प्रयोग के लिए एक महत्वपूर्ण रणनीति है जिसे माता-पिता को भी बताया जा सकता है।
- संवेगात्मक रुप से बढ़ना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि वयस्क भी संवेगात्मक परिपक्वता को बौद्धिक विकास जैसा ही आवश्यक मानते हैं। एक साथ रहना सीखना

बहुत आवश्यक है। माता-पिता को शांत रहने एवं सांवेगिक रुप से संतुलित रहने के लिए प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है।

- स्वतंत्रता का विकास एक महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्य है जिसे प्रत्येक बच्चे को प्राप्त करना होता है।
- जैसा कि बहुत से कार्यों को पूरा करना मुश्किल है, बच्चे प्राय: असंतोष एवं अवसाद का अनुभव करते हैं। अपेक्षाओं को पूरा करने में असफलता उन्हें अपनी क्षमताओं के बारे में संदेह या विश्वास में कमी की तरफ ले जाती है। माता-पिता को इस प्रकार के मुद्दों में जागरुक बनाने की आवश्यकता है जो विपरीत रुप से अधिक नुकसान कर सकते हैं।
- देखभाल करने वाले एवं सुविधाजनक वातावरण को स्वस्थ संबंधों के साथ जोड़ देने से पहचान निर्माण के विकासात्मक कार्य को सरल बनाने में सहायता मिलेगी।
- अध्यापकों को बच्चों के मित्रों/समकक्षियों का निरीक्षण करना चाहिए जिनके साथ उनके बच्चे घूमते हैं एवं जिस प्रकार के क्रिया-कलापों में वे लगे हुए हैं, आदि।

अध्यापकों को बच्चों की आवश्यकताओं एवं शिक्षण-अधिगम की आवश्यकताओं तथा बच्चों को सँभालने में संवेदनशील होना चाहिए। यह शैक्षिक समस्या को एवं अध्ययन में अरुचि को कम करेगा। अध्यापकों को बच्चों को स्नेह एवं सम्मान के साथ संभालने, पक्षपातरहित व्यवहार एवं उपयुक्त अनुशासनात्मक तरीकों के प्रयोग को सीखने की आवश्यकता है।

4.8 सारांश

इस यूनिट में आपने सीखा है कि एक अध्यापक या परामर्शदाता के रुप में अपनी भूमिका निभाने के क्रम में यह समझना आवश्यक है कि किस प्रकार से विकास एवं समायोजन की प्रक्रियाएँ एक दूसरे की पूरक हैं तथा पहचान निर्माण होता है। विकास गतिशील एवं सतत् है तथा समायोजन को प्रभावित करता है, साथ ही साथ इसके द्वारा प्रभावित भी होता है। बहुत से कारक विकास एवं समायोजन को प्रभावित करते हैं। कुछ कारक व्यक्ति के आन्तरिक हैं एवं कुछ बाह्य हैं। आन्तरिक कारक व्यक्ति के अन्दर हैं जैसे शारीरिक प्रणाली, चयापचयन, मस्तिष्क, नाड़ी की गति अथवा आँखों का रंग। बाह्य कारक पर्यावरण में होते हैं। कुछ कारक जैसे परिवार, विद्यालय, पास-पड़ोस एवं समुदाय की चर्चा की गई थी। आपने यह भी सीखा है कि आन्तरिक एवं बाह्य कारक अनवरत् रुप से एक-दूसरे के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं एवं एक व्यक्ति के विकास एवं समायोजन पर प्रभाव डालते हैं। यह विभिन्न अवस्थाओं के लिए उपयुक्त विकासात्मक कार्यों में निपुणता प्राप्त करने को भी प्रभावित करता है।

आत्म-मूल्यांकन अभ्यास

1. आप विद्यालय में छात्रों के विकास को सुसाध्य बनाने में सहायक एक पर्यावरण को किस प्रकार उपलब्ध करा सकते है?
2. विकासात्मक कार्य क्या हैं और वे एक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण क्यों है?
3. आप किस रुप में सोचते हैं कि विकासात्मक कार्यों का ज्ञान आपको एक परामर्शदाता/अध्यापक के रुप में सहायता कर सकता है?
4. अध्यापक एवं माता-पिता किस प्रकार से स्वस्थ पहचान के विकास को प्रोत्साहित कर सकते हैं?

आत्म-मूल्यांकन अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

1. विद्यालय में बच्चों के विकास को सुसाध्य बनाने में प्रेरक पर्यावरण बच्चों की आवश्यकताओं के बारे में अध्यापकों एवं विद्यालय के अधिकारियों के बीच जागरुकता उत्पन्न करके एवं इन आवश्यकताओं के प्रति प्रतिक्रिया हेतु विद्यालय में अनुकूल वातावरण आयोजित करके उपलब्ध कराया जा सकता है। बच्चों को चाहे उनकी पृष्ठभूमि कुछ भी हो, उनके साथ प्रेम, देखभाल एवं सम्मान के साथ बर्ताव करना चाहिए। विद्यालय में बच्चों के लिए सुरक्षित एवं प्रेरक वातावरण उपलब्ध कराना बहुत आवश्यक है जिससे वे विभिन्न क्षेत्रों–शारीरिक, शैक्षिक, संगीत आदि में अपनी योग्यता को विकसित एवं प्रदर्शित कर सकें। वातावरण चुनौती भरा होना चाहिए परन्तु जरुरत से ज्यादा नहीं जिससे तनाव उत्पन्न हो। विद्यालय में सभी प्रकार के अंतर्वैयक्तिक संबंधों अध्यापक-अभिभावक, अध्यापक-शिष्य, समकक्षी छात्रों आदि को तनाव एवं हिंसा के प्ररिप्रेक्ष्य में जाँचना चाहिए तथा सुरक्षा एवं प्रोत्साहन प्रस्तुत करना चाहिए।
2. विकासात्मक कार्य व्यवहारों के समूह हैं जिसे एक व्यक्ति को एक निश्चित समय अवधि में निपुण होने या प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ, एक छोटे बच्चे से करीब एक वर्ष तक एकाक्षरों में बात एवं घूमने की अपेक्षा की जाती है। 2-3 वर्ष तक का होने पर वह छोटे-छोटे वाक्यों में अनुरोध करना सीख लेता/लेती है। इन विकासात्मक कार्यों को प्राप्त करना आवश्यक है क्योंकि भविष्य के कार्यों का अधिगम पूर्व अवस्था के विकास में हासिल किए गए कार्यों के ऊपर निर्भर होता है। एक विशेष अवस्था के लिए निर्धारित कार्यों में निपुणता के पश्चात् वह बाद के कार्यों में सफल होता है एवं प्रसन्न्ता महसूस करता है जबकि असफलता से अप्रसन्नता एवं दूसरों की असहमति मिलती है।

3. विकासात्मक कार्यों का ज्ञान एक अध्यापक/परामर्शदाता को बच्चे के विकास का स्तर समझने एवं आगे विकास करने के लिए अनुभवों का पता लगाने में सहायता करता है। उदाहरणार्थ, यदि एक अध्यापक निरीक्षण करता है कि एक प्राथमिक विद्यालय का बच्चा वाक्य को अच्छी तरह से बोलना या शब्दों का स्पष्ट उच्चारण नहीं कर सकता है तब वह विद्यालय में दिए जाने वाले निर्देशों से लाभ के लिए तैयार नहीं होगा। अध्यापक उस स्थिति से माता-पिता को अवगत कराने के लिए उनके साथ बातचीत कर सकता है एवं बच्चे के विकास को बढ़ाने के लिए एवं अपने शब्दों को स्पष्ट रुप से उच्चारण करने की आवश्यकता के विकासात्मक कार्य को प्राप्त करने की सलाह दे सकता है। यदि बच्चे के अन्दर डर है तो उस डर को हटाने के लिए कुछ वाक्य बोलकर अथवा मौखिक अन्योन्यक्रिया को बढ़ाकर जैसे कहानी-सुनाना आदि के द्वारा हो सकता है।

4. माता-पिता एवं अध्यापक आदर्श प्रतिमान होते हैं वे जिस व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं बच्चों के द्वारा उसे अपनाने की अधिक संभावना होती है। इसलिए यह उनकी जिम्मेदारी है कि वे इस विषय में सावधान रहें कि वे किस प्रकार के व्यवहार का प्रदर्शन कर रहे हैं और उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रोत्साहित कर रहे हैं। जिस प्रकार की टिप्पणी ये महत्वपूर्ण व्यक्ति बच्चे की योग्यता, व्यक्तित्व एवं उपलब्धियों के बारे में करते हैं तथा जो अपेक्षाएँ रखते हैं वे बच्चे के पहचान के विकास के लिए निर्णायक होती हैं। यदि माता-पिता सकारात्मक प्रतिप्राप्ति (फीडबैक) उपलब्ध कराते हैं जैसे बच्चे की कमजोरियों को पकड़ने की अपेक्षा उनके सशक्त पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करना, यह सकारात्मक आत्म-प्रतिमान एवं रुझान में समग्र रुप से सकारात्मकता लाता है। इसी प्रकार से प्रोत्साहन, प्रेम, दूसरों के प्रति सकरात्मक अभिवृत्ति, सहयोग, सच्चाई, न्याय, आत्म-अनुशासन आदि अध्यापकों एवं अभिभावकों से प्राप्त होने पर बच्चों में अपने आप इसी प्रकार के पहचान को विकसित करना सहज हो जाएगा।

आत्म-निरीक्षण अभ्यासों के लिए उत्तर बिंदु

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-1

1. व्यक्ति विकास एवं समायोजन में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं क्योंकि विकास की गति विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग होती है और एक क्षेत्र में प्राप्त किया गया विकास अन्य क्षेत्रों के विकास को भी प्रभावित करता है। उच्च स्तरीय विकास उच्च स्तरीय समायोजन की तरफ भी ले जाता है। उच्च स्तरीय विकास वाले व्यक्ति अपने पर्यावरण में निपुणता प्राप्त करते हैं एवं बेहतर समायोजन की तरफ बढ़ते हैं।

2. समायोजन के लिए उत्तरदायी आनुवंशिक कारक शारीरिक एवं वंशानुक्रम विशिष्टताएँ हैं जैसे आँखों का रंग, बाल, मानसिक दशा, संवेदनात्मकता, चालक समन्वयन, पेशी-समूह, तेजस्विता, वाक् एवं श्रवण युक्तियाँ, शक्ति स्तर, उपापचय, तन्त्रिकीय प्रणाली एवं अंत:स्त्रावी ग्रंथियाँ जो एक बच्चे के प्रयास एवं स्थायित्व को प्रभावित करते हैं।

3. व्यक्ति के बाह्य कारक जो उसके विकास एवं समायोजन को प्रभावित करते है: पहला-परिवार जिसमें बच्चे की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी होती हैं एवं एक स्वस्थ व्यक्तित्व की आधारशिला रखी जाती है। परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर सामाजिक-संवेगात्मक विकास एवं जिस प्रकार का अंतर्वैयक्तिक कौशल वह विकसित करना चाहता है उसे सुनिश्चित करता है। विद्यालय भी बच्चों को शिक्षण-अधिगम, अनुशासन एवं प्रेरणा के द्वारा उन्हें एक जिम्मेदार एवं उत्पादक नागरिक के रुप में अपनी क्षमता, आत्म-सम्मान एवं व्यक्तित्व के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इन दोनों के अलावा पास-पड़ोस, मीडिया एवं समकक्षी समूह कुछ अन्य कारक हैं जो बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं।

आत्म-निरीक्षण अभ्यास-2

1. पहचान, अपने बारे में अपने ज्ञान, भावना एवं अभिवृत्ति से संबंधित है। यह स्वयं का अन्य के साथ संबंध का वर्णन है। सामाजिक पहचान का अभिप्राय व्यक्ति के आत्म-सम्प्रत्यय से है जो उसके सामाजिक समूह से संबंधित सदस्यता के साथ ही साथ उस समूह की सदस्यता के साथ जुड़े हुए मूल्यों एवं संवेगात्मक महत्व से संबंधित है।

पठनीय पुस्तकें

- पपालिया, डी.ई., ओल्ड्स, एस. डब्ल्यू. एंड फेल्डमैन, आर. डी. 2004, ह्यूमन डेवलपमेंट (नौवाँ संस्करण), मैकग्रा-हिल, न्यूयॉर्क।
- बर्क, एल. ई. 2003, चाइल्ड डेवलपमेंट (सातवाँ संस्करण), प्रेंटिस-हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देहली।
- लेफ्रैन्क्वाइस, जी. आर. 2005, थ्योरीज ऑफ ह्यूमन लर्निंग : व्हाट द ओल्ड वूमन सेड (पाँचवाँ संस्करण), वड्सवर्थ, कैलीफोर्निया।
- हरलॉक, ई. बी. 1997, चाइल्ड डेवलपमेन्ट (छठा संस्करण), टाटा-मैकग्रा-हिल, न्यू देहली।
- बापट, ए. 1999, डेवलपमेन्टल साइकोलॉजी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।